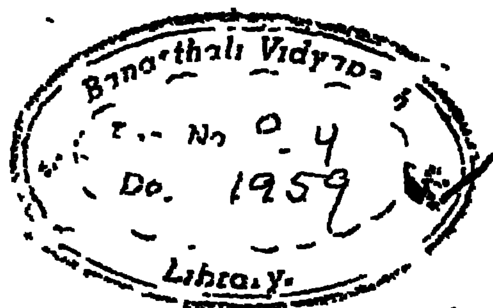
Printed by Satish Chandra Roy at the "Samachar Press"

AND

Published by B. L. Sharma of the Rajasthan Agency.

8|1, Ramkumar Rakshit Lane, Calcutta.





* श्रीहरिःशरणम् *

भूमिका ।

मातृत्वरूपसे स्त्रीका पूर्ण विकास—जिस समय स्नेहकी मूर्त्ति जननी, धर्मकी रक्षा, देशवासियोंके आनन्द-वर्द्धन और जातीय सम्मानकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंसे भी प्यारे लाल-को अपनी छातीपर पत्थर रख, मातृभूमिकी पवित्र वेदीपर हँसते-हँसते बलिदान कर देती है, उस समय हमलोग, उस मातृत्वका पूर्ण-विकास देखते हैं। वह सौभाग्यशालिनी परम सुन्दरी है, जो बहुसंख्यक पुत्रोंकी जननी है और वही जननी, जननी है, जो देश-कल्याणके नामपर बिना कातर हुए प्रसन्नता-पूर्व्वक अपने पुत्रके शोणितसे माता मेदिनीकी जलती हुई छाती को ठण्डी करनेके लिये उपयुक्त स्थानमे अपने अञ्चलके निधि, आंखोंके तारे, प्राणोंके प्राण पुत्रको अर्पण कर दिया करती है। शास्त्रकारोंने मातृत्वकी इसी पूर्णताको लक्ष्य कर मुक्तकण्ठसे स्त्रियोंकी प्रशंसामें ब्रह्माणी, जगत्की प्रसुविणी, आदि सम्मान-सूचक शब्द कहे हैं।

जिस समय एक भारतीय जननीको युद्धस्थलसे लौटे हुए अपने पुत्रके सहयोद्धासे मालूम हुआ कि युद्ध भूमिमें मेरे सात

पुत्र, वीरगतिको प्राप्त हो गये, उस समय, उसने यह प्रश्न नहीं किया, कि गो-ब्राह्मणकी रक्षाके लिये-धर्म्मकी मर्यादा रखनेके लिये जो युद्ध प्रारम्भ हुआ था, उस युद्धका परिणाम क्या हुआ। उस देवीने "हमारी विजय हुई, हमारे धर्म्मकी रक्षा हुई और मेरे पुत्रोंका जन्म लेना सफल हुआ, मैं आज ही अपनेको पुत्रवती समझती हूं," इन उत्साह भरे वचनोंको कह कर अपने शोकके वेगको संवरण किया।

इस त्यागकी वातका स्मरण करनेपर शरीर रोमाञ्चित हो आता है—हृदयमें आनन्दकी तरङ्गें उठ कर आँखोंके द्वारा आँसुओंके रूपमें वाहर निकल पड़ती हैं और अन्तरात्मा वड़े गौरवसे कह उठती है कि—देशके सम्मानकी रक्षा करनेके लिये, देशके हृदयमें आनन्दका संचार करनेके लिये अपने यथासर्व स्व पुत्ररत्न-को वलि चढ़ा देनेमें हमारी माताओंके—हमारी देवियोंके हृदय कभी संकुचित नहीं हुए!

चारो वेदोंमें हमारी माताओंके देवीत्वका प्रतिपादन करने वाली वहुतसी श्रुतियां देखनेमें आती हैं। कहीं तो हमारी माताएं देशके गोधनकी रक्षाके लिये रथपर आरूढ़ हो दस्युओं-के हाथसे उनका उद्धार करनेके निमित्त प्रयत्न करती हुई दिखायी देती हैं और कहीं पतिकी अनुपस्थितिमें घरकी अधिष्ठातृ रूपसे स्वयं दैवी कार्य्य सम्पादन करनेके लिये भलीभांति धर्म-कार्य्योंमें निरत रहती हैं। कहीं वह ब्रह्मवादिनी देवी,

अपने पुत्रादिकी माया-ममता छोड़ कर अभीष्ट साधनके लिये व्रत-नियमका पालन कर रही हैं, और कहीं हमारी जननी, अपने कोमल किशोरको असाधारण व्रतका व्रती बनानेके लिये उनके मुँहमें स्तन दान कर रही हैं। प्राचीन भारतके प्रत्येक गृहमें ऐसे-ऐसे दृश्योंका अभाव नहीं था। अतीत युगकी यह कथा, यह जीवनप्रद-पुंसवन, पवित्र गाथा, अतीत भारतके गृह गृहमें गायी जाती थी। उसीका फल था, कि देशमें दानवीर, युद्धवीर, ज्ञानवीर, प्रभृति पुरुषोंका बराबर आविर्भाव होता था।

यह बात सब स्वीकार करते हैं, कि विदेशियोंके आगमनसे भारतवर्षकी अत्यन्त क्षति हुई है, पर अनेक प्रकारके बहुमूल्य धन-रत्नोंके विदेश चले जानेसे भारत उतना क्षतिग्रस्त नहीं हुआ है, जितना वह विदेशियोंके संसर्ग तथा प्रभावसे भारतीय शिक्षादीक्षाके मूलोत्पाट और परिक्षीण होनेसे क्षति-ग्रस्त हुआ है। विदेशियोंके आगमनसे भारतकी ही क्यों सारी पृथ्वीकी अभावनीय क्षति हुई है। कोहिनूर आदि धन-रत्न तथा भारतके अपूर्व ग्रन्थ-रत्नोंके विदेश चले जानेके कारण हम लोगोंको किञ्चन्मात्र भी ईर्ष्या या दुःख नहीं है, क्योंकि हमलोग समझते हैं, कि ये पदार्थ, मनुष्योंके भोगके लिये ही बनाये गये हैं, इसलिये "वीर-भोग्या वसुन्धरा"के नियमानुसार जो जाति वीर होगी, वह इन पदार्थोंका अवश्य उपभोग करेगी। आज हमारी निर्बलतासे वे रत्न हमसे छिन गये हैं, तो प्रकृति हमें यह कह कर आश्वासन

देती है, कि तुम फिर भी वीर बनोगे-फिर भी वे तुम्हारे रत्न तुम्हें भोगनेको मिलेंगे। प्रकृतिके इस आश्वासनपर सुनहली आशाके आलोकसे हृदय कमलको विकसित करना स्वाभाविक है। एक बात। दूसरी बात है, कि धन या पुस्तकें ये कोई चीज़ नहीं। जिस मनुष्यका नैतिक बल, अक्षुण्ण बना रहे, वह धन जन या पुस्तक रहित होनेपर भी संसारकी आँखोंमें सम्मानका पात्र समझा जायगा। हमारी धारणा है, कि धन तथा ग्रन्थ रत्नोंके न रहनेसे हम लोग दरिद्रकी तरह हीन और पतित नही रह सकते, परन्तु जिस प्राचीन शिक्षापद्धति तथा अपनी माताओंकी पियूष-वर्षिणी शिक्षासे वञ्चित होकर हम लोग जिस प्रकार हीन और पतित हुए हैं, शत-शत कोहिनूरोंके प्राप्त हो जानेपर भी, हमलोगोंकी वह हीनता पतितावस्था और दुरवस्था दूर नही हो सकती। अतः श्रीभगवान्से बद्धाञ्जलि प्रार्थना है, कि हे भगवन् आपकी यह लीलाभूमि,—आपकी परमप्रिय भूमि अधःपतनकी अन्तिम सीमामे पहुंच गयी है, इसकी रक्षा कीजिये, दारुण दुर्दैवसे इसका त्राण कीजिये। पुनः उस पियूषधाराको प्रवाहित कर इस मृतप्राय अवसन्न जातिको संजीवित और शक्ति-सम्पन्न कर दीजिये। संसारकी उस अपूर्व्व सभ्यताके विलुप्त होनेसे जड़ विज्ञानवादी अपने जड़ मस्तिष्कमें उसकी कल्पना करनेमें भी समर्थ नहीं होगा, उद्भावन और अनुकरण तो दूर रहे।

स्वाधीन भारतकी माताएं जिस शिक्षाके द्वारा अपने पार्थिव वैभवसम्पन्न पुत्रोंको आत्मज्ञानसम्पन्न बनानेके लिये उपदेश देती थीं, अवसाद-ग्रस्तोंको उत्तेजित कर उन्हें कर्त्तव्य-पथपर ले आती थीं, मृतप्रायको सञ्जीवित करती थीं, वह प्राण-प्रद शिक्षा-प्रवाह अपने समाजमें पुनः प्रवाहित हो। पुनः हमारी माताएं प्राचीन कालकी माताओंकी तरह, देश-कल्याणके नामपर, अपने सर्वस्व,अपने अञ्चलनिधि, अपने प्राणका उत्सर्ग करनेमें समर्थ हों। अपनी इसी मनोकामनासे "केनापि देवेन हृदिस्थितेन"-प्रेरित होकर, इस छोटी सी पुस्तकमे प्राचीन कालकी प्रातः-स्मरणीया माताओंके अमूल्य उपदेशोंको रामायण, विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराण एवं महाभारतसे संकलित किया है। आप हमारी मनोकामना पूरी करें।

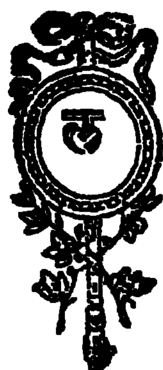
रिसड़ा।
ई० आई० आर०
(बङ्गाल)

श्रीसत्यचरण शास्त्री।



सुमित्रा





क्ष्मणकी जननी सुमित्राका नाम कौन नहीं जानता? जिस समय मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रके राज्याभिषेकका आयोजन हो रहा था, जिस समय सब लोग प्रसन्नता मना रहे थे, उस समय अचानक उनके वनगमनकी बात सुनकर लोगोंके विकसित मुख कमलपर तुषार पड़ गया। अन्तःपुरकी सभी महिलाएं अधीर हो उठीं। केवल देवी सुमित्रा ही उनमें एक थीं, जिन्होंने "विपदि धैर्य्यम्" अवलम्बन करना उचित समझा और सबसे पहले रामकी माता कौशल्याको उन्होंने ढाढ़स बंधाया। विपद्की मारी, दुर्भाग्यकी सतायी कौशल्याने किसी प्रकार धीरज धारण कर अनिवार्य्य विपद्को सहन किया और अपने प्यारे पुत्र रामके वन जानेपर उनकी रक्षाके लिये वे देवदेवी मनाने लगीं जिसमें पुत्र निर्विघ्न घर लौट आवे। इधर सुमित्राने कौशल्याको आश्वासन देकर रामके साथ वन जानेके लिये तैयार लक्ष्मणको शोक विह्वला होनेपर भी सारयुक्त जो थोड़ा सा उपदेश दिया है, उससे उनकी सहृदयता, तेजस्विता और पुत्र-कर्त्तव्यकी अभिज्ञता भलीभांति प्रकट होती है।

शोकके समय जो अपनी शक्तिपर सन्देह नहीं करते अथवा उत्साह दिखलानेके समय जो अपनी शक्तिको स्वल्प नहीं मानते हैं, वे अपने शक्तिविषयक ज्ञानसे वञ्चित नहीं होते। ऐसे ही स्त्री-पुरुष कार्य्यक्षेत्रमें प्रतारित नहीं होते। देवी सुमित्राको अपनी शक्तिकी अभिज्ञता पूर्ण रूपसे थी, यह उनके कर्त्तव्य-बुद्धि-विवर्द्धक उपदेशोंसे स्पष्ट मालूम होता है। वर्तमान कालकी माताएं प्राचीन कालकी माताओं-के उपदेशोंका अनुशीलनकर वर्तमान कालके पतित, दुःखित उत्साह-हीन पुत्रोंको उत्साह परायण, कर्तव्यनिष्ठ और सन्मार्गगामी बनावें, यही हमारी उनसे प्रार्थना है और इसी प्रार्थनाको उनके द्वारा कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये पहले सुमित्रा देवीके उन उपदेशोंको, जिन्हें उन्होंने लक्ष्मणको दिया था, यहां उद्धृत करते हैं। सुमित्राने कहा किः—

"सृष्टस्त्वं वनवासाय, स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति॥
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ।
एष लोके सतां धर्मो यज्जेष्ठवशगो भवेत्॥
इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम्।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि॥
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि, गच्छ तात यथा सुखम्॥
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाचतम्॥

सुमित्रा।

रामचन्द्रजी, बन जानेके लिये तैयार हो रहे हैं, सती शिरो-मणि सीताजी भी उनके साथ जायंगी, ऐसी दशामें सीता-राम-विरहित अयोध्यामें पूज्याग्रजके अनन्य भक्त लक्ष्मण, अयोध्यामें कैसे रह सकते हैं? आप भी अपने पितातुल्य भ्राताके साथ बन जानेका दृढ़ निश्चय कर अपनी जननी सुमित्रासे अनुमति लेने चले! पुत्रके चरणस्पर्श कर अनुमति मांगनेपर जननीने उनका मस्तक चूम कर कहा "पुत्र! तू रामका बड़ा अनुरक्त है; इसलिये मैं तुझको बन जानेकी अनुमति देती हूं! लक्ष्मण, मैं जानती हूँ, कि तू निष्पाप है; फिर भी कर्तव्यके अनुरोधसे कहे देती हूँ, कि अपने बड़े भ्राता, रामकी सेवामें कभी असावधानी नहीं करना। बड़े भ्राताका अनुगामी होना, अनुजके लिये परम धर्म है, यह साधु-महात्माओंके वचन हैं, इसलिये बड़े भ्राता विपन्न हैं या समृद्धिशाली, इसका कुछ भी विचार न कर, क्योंकि वह ही तेरी गति हैं। दान, यज्ञ, दीक्षाग्रहण और युद्धमें प्राणत्याग—ये बातें इक्ष्वाकुवंशियोंके लिये वंशपरम्परागत अवश्य कर्तव्य, और चिरन्तन पद्धति है। तू भी इन कर्त्तव्योंका पालन कर अपने वंशकी मर्यादा रखनेका प्रयत्न करना और तेरे लिये तो वहां भी कोई चिन्ता नहीं? तू बनको अयोध्या सम-झना, राम ही तेरे लिये दशरथ हैं, जनकनन्दिनी जानकीको ही सुमित्रा समझना। अपने अग्रज रामके साथ जा विलम्ब न कर। रामके साथ जानेके लिये शीघ्रता कर।

बेटा, तू निष्पाप है। आज रामके साथ बन जाते समय जैसा तेरा निष्पाप वदन मैं देख रही हूँ, ऐसा ही निष्पाप तेज-युक्त कलङ्क रहित तेरा मुख, मैं बनसे लौट आनेपर भी देखना चाहती हूँ। मुख-मण्डल हृदयके प्रच्छन्न पुण्यपापको प्रदर्शित करनेमें दर्पणका काम करता है। इस समय तेरे इस सरलता मण्डित मुखके देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि तेरे हृदयमें पापका नाम नहीं है, तू पाप रहित है। इसीलिये तुझे सावधान किये देती हूँ, कि देखना, पाप तेरे इस पवित्र हृदयका स्पर्श न करने पावे। साधु महात्माओंका उपदेश है, कि पूज्याग्रजका अनुगामी होना, यह अनुजका कर्तव्य है-धर्म है। तूने जिस पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण किया है, उस पवित्र ईक्ष्वाकुवंशका दान, यज्ञ, सभी शुभ कार्य्योंमें अग्रणी होना और युद्धमें प्राणत्याग करना यह धर्म है। जङ्गलमें भी सुखकी अवस्थामें रह चाहे दुःखकी अवस्थामें रह, पर अपने परम पावन कुल धर्मका पालन करनेमें त्रुटि न करना।" भगवती सुमित्रा देवीने और अधिक कुछ नहीं कहा। केवल इतना फिर समझा दिया, कि "पुत्र, मातापिताके साथ जन्मभूमिमें रहनेपर किसी प्रकारका अभाव दैन्य, और उद्वेग नहीं रहता और तू माता जानकी तथा पिता रामचन्द्रके साथ अरण्य रूप जन्मभूमि अयोध्यामें रहेगा, फिर तुझे वहां कष्ट ही क्या होगा? वहाँ सुखसे विचरण करना! मातापिता और जन्मभूमिकी रक्षा करना—इनकी सेवामें अपने-

को लगा देना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है—धर्म है। तू भी अपने इस कर्तव्यका पालन करनेमें पश्चात्पद न होना। अपना शरीर देकर भी इनकी सेवा करने, और इन्हें सुखी बनानेमें अपना सौभाग्य समझना। धर्म-कार्य्योंमें शरीर देना तेरा कुलधर्म्म है। देखना, जब ऐसा शुभ अवसर उपस्थित हो, तब भ्रममें न पड़ना, अपने कर्त्तव्यका स्मरण रखना। जो अपने कुल-धर्म्मोंका पालन नहीं करता है, वह सबकी आँखोंमें घृणित समझा जाता है। फिर भी मैं तुझे सावधान किये देती हूं कि तू अपने पवित्र कुलधर्म्मसे भ्रष्ट न होना! जिस प्रकार तू सदा सब प्रकारसे यहाँ मेरी रक्षा करता था, उसी प्रकार वनमें सीताकी देख-रेख रखना, रक्षा करना और उनकी आज्ञा-ओंका पालन करना!"

देवी सुमित्राके इन उपदेशोंने बालक लक्ष्मणके हृदयपर जादूका असर किया। जिन इन्द्रियोंने विद्वानोंको भी अपने वशमें करके उन्हें कौड़ीका तीन कर दिया है, उन्हीं इन्द्रियोंको जीतकर अपने कर्तव्यका स्मरण रखनेवाले वीर लक्ष्मणने भली-भाँति अपनी माताकी आज्ञाका पालन किया। चौदह वर्ष तक एक साथ रहनेपर भी लक्ष्मणने सीताके मुखकी ओर देखातक नहीं। इस बातकी सत्यताका प्रमाण लक्ष्मणजीके वाक्योंसे ही मिलता है। लक्ष्मणजी कहते हैं:—

नाहं जानामि केयूरं नाहं जानामि कुण्डलं।
नूपुरत्वभिजानामि नित्यं पदाभिवन्दनात्॥

अर्थात्, प्रतिदिन पद-वन्दना करनेके कारण मैं केवल उनके पावजेबको ही पहचानता हूँ केयूर शिरोभूषण या कंकणको नहीं पहचानता !

अहा ! क्या जितेन्द्रियता और मातृ-आज्ञाकी विलक्षण स्मृति है !

जीवमात्र सुखकी आकांक्षा करता है। यदि तू भी सुख चाहता है तो कर्त्तव्यका पालन कर। यदि तू कर्त्तव्यका पालन करेगा, तो अरण्यमें पर्व्वतमें सर्व्वत्र तुझे सुख प्राप्त होगा। यह अन्तिम उपदेश देकर अपने अञ्चलके निधि पुत्रको सुमित्राने शीघ्र ही रामचन्द्रके साथ वन भेज दिया।



सुनीति



प्राचीन समयमें हमारे भारतवर्षमें प्रियव्रत नामक एक राजा थे। उनके सुरुचि तथा सुनीति नामकी दो रानियां थीं। सुनीतिपर राजाका वैसा प्रेम नहीं था, जैसा सुरुचि पर। सुनीतिके गर्भसे ही लोक पावन-ध्रुवका जन्म हुआ था। सुरुचिके गर्भसे राजाके जो पुत्र हुआ था, उसका नाम उत्तम था।

एक समयकी बात है, कि सिंहासनासीन अपने पिताकी गोद्‌मे उत्तम बैठा था। उत्तमको पिताकी गोद्‌मे बैठे देख कर बालक ध्रुवकी भी इच्छा हुई कि मैं भी पिताकी गोद्‌में बैठूं। बालक ही तो था—मचल पड़ा; पर उस स्त्रैण राजामें इतनी हिम्मत नहीं थी, कि वह अपनी प्यारी रानीके सामने, उसके सौतेले लड़केको गोद्‌में बैठाता। उसने पुत्र ध्रुवको प्रेमपूर्ण शब्दोंमें कुछ समझाया तक नही! सुरुचि तो यह चाहती ही थी! राजाका रुख देख कर उसने जलीकटी बातोसे ध्रुवका घोर तिरस्कार किया और उसे अभागा कह कर राजाकी गोद्‌मे बैठनेके अयोग्य बताया। बालक ध्रुवको अपने मातापिताका

यह व्यवहार बहुत बुरा लगा। वह क्रोधसे तमतमाता हुआ अपनी जननी सुनीतिके समीप चला गया! पुत्रके कांपते हुए होठोंसे उसके क्रोधित होनेका अनुमान कर माता सुनीतिने बड़े प्यारसे पुत्रको अपनी गोदमें ले लिया और प्रेमपूर्ण वचनोंसे उसके क्रोधका कारण पूछा। पुत्रने एक लम्बी सांस लेकर पिताके तिरस्कार और माताकी गर्वोक्तियोंको कह सुनाया। पांच वर्षका वह क्षत्रिय बालक अपनी सौतेली माताके अपमानको भूला नहीं—वह अपनी अपमानयोग्य दुरवस्थाको दूर करनेके प्रयत्नमें लगा। ध्रुवने अपनी अपूर्व निष्ठा, अनन्य साधना, अनवरत उद्योग, और अद्भुत विश्वासके बलसे अपनी अभिलाषा पूरी की। उसकी उग्र तपस्यासे पृथ्वी कांप उठी, देवता उद्विग्न हो गये, और अखिल लोक चकित हो गये। कोई भी जब अपने सुख दुःख की पर्वाह न कर अभीष्ट सिद्धिके लिये घोरतर तपस्या करनेको उद्यत हो जाता है, तब उसका अभीष्ट कार्य अवश्य पूर्ण होता है—उस समय उसकी आकांक्षा कभी अपूर्ण नहीं रहती।

पृथ्वीके तपस्वियोंका जो इतिहास है, उसमे ध्रुवका उदाहरण अत्यन्त दुर्लभ है। यदि देशमें बाल तपस्वियोंकी संख्या बढ़ जाय, तो देश कदापि कष्टके समुद्रमें निमग्न नहीं रहेगा। अपनी माता सुनीतिके जिस उपदेशसे बालक ध्रुवने ध्रुव पद

, वह अमृतमयी सञ्जीवनी शिक्षा, आज भी हमारी आधुनिक माताएं अपने पुत्रको दे कर देशको पवित्र करें :—

सुरुचिः सत्यमाहेदं स्वल्पभाग्योऽसि पुत्रक ।
नहि पुण्यवतां वत्स सपत्नै रेवमुच्यते ॥
नोद्वेगस्तात कर्त्तव्यः कृत यद् भवता पुरा ।
तत्कोऽपहर्तुं शक्नोति, दातुं कश्चाकृतं त्वया ॥
राजासन तथा छत्रं वराश्वा वरवारणाः ।
यस्य पुण्यानि तस्यैते मत्वैतत् शाम्य पुत्रक ॥
अन्य जन्मकृतैः पुण्यैः, सुरुच्याः सुरुचिः नृपः ।
भार्येति प्रोच्यते चान्या मद् विधा भाग्यवर्जिता ॥
पुण्योपचयसम्पन्न स्तस्यापुत्रस्तथोत्तमः ।
मम पुत्रस्तथा जातः स्वल्पपुण्यो ध्रुवो भवान् ॥
तथापि दुःख न भवान् कर्तुमर्हति पुत्रक ।
यस्य यावत् स तेनैव स्वेन तुष्यति बुद्धिमान् ॥
यदि वा दुःखमत्यर्थं सुरुच्यावचसा तव ।
तत्पुण्योपचये यत्नं कुरु सर्व्वं फलप्रदं ॥
सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रःप्राणि हिते रतः ।
निम्न यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदाः ॥

सन्तप्त पुत्रके मुखसे उसके अपमानकी बात सुन कर पति-परित्यक्ता दुःखिनी सुनीतिने एक लम्बी सांस ली और आंखोंके आंसू पोंछ कर कहने लगी "पुत्र, सुरुचिने सत्य कहा है, कि तू मन्दभागी है। हे वत्स, जो पुण्यवान् होते हैं—जो भाग्यवान

होते हैं, उनके शत्रु भी उन्हें ऐसी बात कहनेका अवसर नहीं पाते, क्योंकि वे पुण्यवान भाग्यशाली मनुष्य, अपने पुण्यके द्वारा ऐसी स्थितिमें रहते हैं, जिसमें कोई भी मन्दभाग्य नहीं रहता और न मन्दभाग्यका सूचक कोई भाव ही उनके यहां रहता है। हे तात! तू उद्विग्न मत हो। तूने पूर्व जन्ममें जो कुछ किया हैं, उसको कौन मेट सकता है? स्वयं तू ने जिस पदार्थका सञ्चय नही किया है, उसे दूसरा कोई तुझे कहांसे दे सकता है? राज्यासन, छत्र, श्रेष्ठ हाथी और श्रेष्ठ अश्व, ये सब वस्तुएं पुण्यवानोंको ही मिलती हैं, यह समझ कर तू शान्त हो जा। पूर्व जन्मके पुण्यके फलसे सुरुचिपर राजाकी सुरुचि हुई है। मेरी जैसी हतभागिनी स्त्रियां तो, नाममात्रके लिये पतिकी भार्या होती हैं। पुण्यशालिनी सुरुचिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण उसका पुत्र भी पुण्यशाली एवं भाग्यवान है और मेरी जैसी हतभागिनी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण तू भी हतभागी है। हे पुत्र, ऐसी दशामें तुझे दुःख करना उचित नहीं। बुद्धिमान् पुरुष अपने भाग्यमें लिखे हुए अल्प भागको पाकर भी सन्तुष्ट रहते हैं। हां, यदि सुरुचिके वचनोंसे तुझे अत्यधिक कष्ट हुआ है, तो उस कष्टके दूर करनेका एक ही उपाय शेष रह गया है। वह उपाय है पुण्यसंग्रह करना। पुण्यके बलसे अघटित घटनाएं भी हो जाती हैं। तू सबसे पहले सुशील, धर्मात्मा, सबका मित्र, और संसारके अखिल

प्राणियोंके हितमें रत रहे। जिस प्रकार जलकी धारा नीचे-की ओर जाती है, उसी प्रकार सभी सम्प्रदाएं भी पुण्य-वानोंका आश्रय लेती हैं।"

साधारणतः स्त्रियां किसीको आश्वासन देनेके समय अदृष्टवादका अवतरण किया करती हैं, सुनीतिने इसी उपायसे बालक ध्रुवके अभिमानको दूर करनेके लिये—पुत्रको शान्त करनेके लिये उसी उपायका अवलम्बन किया, भाग्यके भरोसेपर रह कर विमाता द्वारा किये गये अपमानको भूल जानेके लिये कहा।

इस प्रकारके प्रयत्नोंसे मनुष्योंमें क्रिया-शून्यताका आविर्भाव होता है, केवल भाग्यके भरोसे रहनेसे मनुष्योंमें काम करनेकी जो शक्ति रहती है, वह शक्ति पनपने नहीं पाती, यही कारण है, कि उन्नतिपथके गामी इस उपायको सुनना नहीं चाहते! सौतेली माके वाग्वाणसे जिसका हृदय चूर-चूर हो गया है, उस ध्रुवको भी माताका यह उपदेश जलेपर नमकके समान लगा—माताके इस उपदेशने उसके हृदयको जर्जरित कर दिया! जो कायर पुरुष होते हैं, वही अपनी हीनावस्थासे सन्तुष्ट रहते हैं। संसारमें कठिनसे कठिन कामोंको करनेके लिये ही जिनका अवतार हुआ है, वह अद्भुतकर्मा वीर-पुरुष, किसी अवस्थामें भी निश्चेष्ट या सन्तुष्ट होकर नहीं रहना चाहते। यही कारण है, कि

भाग्यके भरोसे रहनेकी बातपर तो बालक ध्रुवने ध्यान नहीं दिया; पर सर्व फलप्रद, पुण्यका संग्रह करनेकी शिक्षाको उसने बड़े प्रेमसे सुना। ध्रुवके मनमें यह दृढ़ विश्वास हो गया, कि संसारमें ऐसा कोई भी पद नहीं है, जो पुण्यसे प्राप्त न हो! इस सत्य वचनपर विश्वास कर उन्नतमना ध्रुवने अपने पैतृक-राज्य, धन-सम्पत्ति सबको तुच्छ समझा। जिस पदको पिता भी प्राप्त नहीं कर सका अपने पुण्यबलसे उस लोकोत्तर अपूर्व पदकी प्राप्तिके लिये उसने दृढ़ संकल्प किया। पतित व्यक्ति या जातिको उन्नत बनानेके लिये—सुनीतिके उपदेशका वह अंश, जिसमें उन्होंने कहा है, कि "सुशील, धर्मात्मा, मैत्र और प्राणिहितमें रत रहो"—पर्याप्त है। जब कोई जाति या व्यक्ति, प्राणियोंके हित-कार्य्यसे विरत हो जाता है, तब वह जाति या व्यक्ति हीन हो जाता है, बड़ी दुर्दशामें ग्रस्त हो जाता है। जातियोंकी दुर्दशा या हीनावस्था दूर करनेके लिये मित्रता या सहानुभूति अमोघ शक्ति है। इन शक्तियोंके प्रभावसे अधः पतित व्यक्ति उन्नत हो जाते है। ऐक्य-सूत्रमे संसारको बाँधनेके लिये सहानुभूतिसे बढ़कर दूसरा कोई मसाला नहीं है। जिस समय जातियाँ या व्यक्ति, परस्परकी सहानुभूतिको खो देते है, उस समय वह पराधीनताका दुस्सह दुःख पानेके अधिकारी हो जाते है।

यही कारण है, कि राजधर्म्मके मर्मको भलीभाँति समझने-

वाली सुनीतिने प्रजाओंके हृदयोंमें अपने प्रभावका सिक्का जमानेके लिये, प्राणिहित-रत होनेके लिये अपने पुत्रको उपदेश दिया। प्रजाशक्तिके सामने राजशक्ति कुछ भी नहीं है। जो प्रजाशक्तिका सञ्चालन कर सकता है, वही सच्चा राजशक्तिका सञ्चालक है। सुनीतिको अपने पुत्रकी दृढ़तापर विश्वास था, उसे अपने पुत्रकी उद्योग-शीलता और तत्परताका इतना भरोसा था जिससे इस समय उस दृढ़ता, उद्योग-शीलता और तत्परताके विकासके अवसरपर देवीके मनमें बहुत बड़ी आशाका सञ्चार हो आया! उन्होंने राजशक्तिका सञ्चालन करनेके लिये ही पुत्रको मित्रता और प्राणिहितमें रहनेको शिक्षा दी। जो इस प्रकार योग्यता-सम्पादन करनेमें समर्थ हैं, वे सब प्रकारकी सभ्यताओंके आश्रय-स्थल होते हैं।

सुनीतिके जिस उपदेशको ग्रहण कर बालक ध्रुव, लोकोत्तर पदके अधिकारी हुए, उस उपदेशसे बढ़कर वर्त्तमान भारतके लिये मङ्गल-जनक उपदेश दूसरा कोई नहीं है। रोग-शोकसे सन्तप्त, क्षुधार्त्त, दरिद्र पड़ोसीके प्रति सहानुभूति न रखनेके कारण वर्त्तमान भारतकी यह अधोगति हुई है। जिस जातिके एक मनुष्यके दुःखसे उस जाति भरके लोग अपनेको दुःखी समझते हैं और उसी प्रकार एक सुखी होनेसे जाति भरके लोग सुखी होते हैं, वह जाति कभी हीन अवस्थामें नहीं रह सकती,

उसका कभी अधःपतन नहीं हो सकता। यही कारण है कि हमारे भारतवर्षमें इन सब गुणोंकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत रहता था। लोग अपने बाल-बच्चोंमें इन सब गुणोंके विकास होनेके लिये यथेष्ट प्रयत्न करते थे।

बालक ध्रुवने अपनी माताके उपदेशानुसार जीवमात्रसे मित्रता की थी, सबको अपना मित्र समझ वैसा ही आचरण करते थे। इसलिये वनके हिंसक पशु भी उनपर सदय रहते थे और उसका एक बाल भी बांका नहीं किया था। सुनीतिके सारयुक्त उपदेशका सुपरिणाम सुनानेका हमारा अभिप्राय यही है, कि सुनीतिके समान वर्त्तमान भारतकी माताएं भी अपने पुत्रोंको सुपात्र बनानेका प्रयत्न करें और अपने इस प्रयत्नमें सफल हो भारतको पवित्र बनावें।

अपनी तपस्याके द्वारा असाध्य-साधन करनेवाले ध्रुवके चरित्र पर विचार करनेसे मालूम होता है, कि मनुष्य, जो इच्छा रखता है—जो उसकी मनोकामना होती है उसकी पूर्त्तिके लिये यदि वह तदनुरूप दृढ़ताके साथ प्रयत्न करे तो, त्रिलोकमें कोई ऐसा दुर्लभ पदार्थ नहीं है, जिसे वह प्राप्त न कर सके। सामान्य पार्थिव-राज्य तो तुच्छ है। देखिये कहाँ मर्त्यलोक और कहाँ ध्रुवलोक! ध्रुवने मानव होकर भी अपने अध्यवसायके बलसे ध्रुवलोक पर अपना अधिकार जमा लिया! कविका यह कथन

यथार्थ है कि उद्यमशालीके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है। व्यवसायी अर्थात् उद्योगी पुरुष, सभी प्रकारके श्रेष्ठ पदार्थों का भोग करते हैं और अव्यवसायी अथवा आलसी पुरुष, कुबेरके खजानेमें रह कर भी भूखों मरते हैं। ध्रुवने माताके कहनेपर भी भाग्यका भरोसा नहीं रखा—उन्होंने पुरुषार्थका सहारा लिया और इसीलिये संसार-क्षेत्रमें पूजित हुए। ध्रुवकी कृपा-का फल है, कि आज हम लोग सुरुचि, उत्तानपादादिके नामसे परिचित हुए हैं। उनकी कठोर तपस्याके फलसे उनका वंश गौरवान्वित हुआ है, देश पवित्र हुआ है और हम लोग, आज भी-इस पराधीनताके युगमें भी गर्व करते हैं। आज यदि हमारी माताएं सुनीतिके पथका अवलम्बन करें, तो क्या कोटि कोटि माताओंकी कोखसे एक भी ध्रुव पैदा नहीं हो सकता?



मदालसा ।





प्राचीन भारतवर्षमें शत्रुजित् नामके एक बड़े शक्तिशाली राजा हो गये हैं। उनके ऋतध्वज नामक एक पुत्र था, जो सभी गुण-रत्नोंसे विभूषित था। एक दिनकी बात है कि गालव ऋषि राजा शत्रुजित्के पास, एक अपूर्व घोड़ा साथ लिये हुए आ पहुंचे। इस घोड़ेमें इतना सामर्थ्य था कि वह विना विश्राम लिये अखिल भूमण्डलकी प्रदक्षिणा कर सकता था, इसीलिये इस घोड़ेका नाम 'कुवल' रखा गया था। राजकुमार ऋत-ध्वज, इसी घोड़ेके नामसे 'कुवलयाश्व' भी कहे जाते थे। गालव ऋषिने महाराजाको अश्व देकर कहा "महाराज, नाना रूप धारण कर, दानव मेरे आश्रममें उपद्रव मचाया करते हैं। यद्यपि मैं सदा समाधिमें रहनेके कारण मौनावलम्बन किये रहता हूं—कुछ भी नहीं बोलता, फिर भी उनके उपद्रवोंसे मेरा मन कभी कभी विचलित हो जाता है। यदि मैं चाहूं तो आज भी उनका दमन कर सकता हूँ; पर दमन-नीतिकी सहा-यता लेकर बहुत दिनों तक कष्ट सह कर तपस्याके द्वारा जिस

पुण्यका सञ्चय किया है, उसका क्षय नहीं करना चाहता। मैं चाहता हूँ कि वे आपकी क्रोधाग्निके पतङ्ग बनें।"

राजाने ऋषिकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपने पुत्र ऋतध्वजको उसी ऋषिके घोड़ेपर सवार कराकर उनके साथ भेज दिया। महर्षि गालव, उन्हें अपने आश्रममें ले आये।

इस पृथ्वीपर दो प्रकारकी सभ्यता वर्त्तमान है—एक आर्य्य सभ्यता और दूसरी अनार्य्य सभ्यता। दूसरे शब्दोंमें इसको यों भी कह सकते हैं, कि संसारमे दो मार्ग हैं—एक निवृत्ति-मार्ग और दूसरा प्रवृत्ति-मार्ग। प्राचीन कालसे लेकर आजतक दानव, दस्यु, राक्षस प्रभृति हमारी आर्य्य सभ्यता या निवृत्ति मार्गके विरोधी रहते आये हैं। प्राचीन समयके ब्राह्मण, इस आर्य्य सभ्यता अर्थात् निवृत्ति-मार्गका प्रचार करनेके लिये सारी पृथ्वीमे भ्रमण किया करते थे और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र शरीर और धन देकर इस सभ्यताकी रक्षा करते थे। यही कारण है, कि आर्य्योंके सामने अनार्य्यों की—दानवों और राक्षसोकी एक न चली। अन्तमें इस पवित्र आर्य्यभूमिसे उनकी जड़ ही उखड़ गयी, वे सदाके लिये नष्ट-भ्रष्ट हो गये। अब भी जो राक्षस-स्वभाव जातियाँ, हमारी आर्यसभ्यताके प्रति विद्वेष प्रकट कर रही हैं, उनके कार्य्य, बता रहे हैं, कि वे भी अपने नाशका मार्ग प्रशस्त बना रही हैं।

वीर बालक, ऋतध्वजने अपने बाहुबलसे दानवोंका दमन कर आश्रममें शान्ति स्थापित की। जिस समय आश्रममें शान्ति विराज रही थी, उस समय, एक बड़ा भयङ्कर दानव आश्रमकी शान्ति भङ्ग करनेके लिये आया और आश्रमवासियोंके ऊपर अत्याचार-उपद्रव करने लगा। उसके अत्याचारसे दुःखी हो, आश्रमवासी चिल्लाने लगे। कुवलयाश्वके कानोंतक जब इसकी खबर पहुंची, तब शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर उन्होंने उस राक्षसपर आक्रमण किया। उनके बाणोंसे व्यथित होकर दानव, अपनी जान लेकर भाग चला। वीर राजकुमारने उसका पीछा नहीं छोड़ा। दानवके पीछे चलते-चलते जब राजकुमार एक जनशून्य नगरमें पहुंच गये तब वहां उन्होंने उस दानवके स्थानपर एक रमणीको देखा। वह स्त्री, राज-कुमारसे बिना कुछ बात किये एक मकानमें चली गयी। राज-कुमारने वहां भी उसका साथ नहीं छोड़ा और उसके पीछे पीछे भीतर जाकर उन्होंने देखा, कि एक रूपवती रमणीके साथ आनेवाली स्त्री, पर्यङ्कपर बैठी है। यहां पूछनेपर राजकुमारको मालूम हुआ कि पर्यङ्कपर जो रमणी पहलेसे बैठी हुई थी, वह गन्धर्व-कन्या मदालसा है और उसे दानव चुराकर ले आये हैं। राजकुमार, रूपवती मदालसाके रूपको देखकर मुग्ध हो गये! अब उस गन्धर्व-कन्याके प्रणय-पाशसे अपनेको मुक्त करना, उन-के लिये कठिन हो गया। निदान, वहीं दोनोंका गन्धर्व-रीतिसे

विवाह हो गया। राजपुत्र, मदालसाको घोड़े पर बैठाकर राक्षसोंकी आंख बचा, अपनी राजधानीको चल पड़े। पर अभी मदालसाके साथ, वह थोड़ी ही दूर जाने पाये थे, कि दानवोंको सारा भेद मालूम हो गया। उन्होंने दल-बलके साथ राजकुमार पर आक्रमण किया; पर राजकुमारकी शक्तिके सामने इन राक्षसोंको पराजित होना पड़ा और वे अपना सा मुंह लेकर वहांसे लौट गये। इधर विजय-लक्ष्मीके साथ मदालसाको प्राप्त कर राजकुमार अपनी राजधानीमें आ गये।

इसी समयसे ऋतध्वजने प्रतिदिन ब्राह्मण-रक्षा और असुर-ध्वंसके लिये भ्रमण करना आरम्भ किया।

ऋतध्वजपर जब प्रत्यक्ष रूपसे आक्रमण कर, दानव विजयी नहीं हो सके, तब विवश होकर उन्होंने ऋतध्वजको वशमें लानेके लिये एक माया-जाल रचा और एक मायामय आश्रमकी स्थापना की। उस आश्रममें रह दुष्ट दानव, ब्राह्मणका वेश धारणकर तपस्या करने लगे। एक दिन घूमते-फिरते ऋतध्वज उसी आश्रममें आ पहुंचे। मुनिरूपधारी दानवने, ऋतध्वजसे अपने आश्रमकी रक्षा करनेका अनुरोध किया। साथ ही उस कपटी दानवने राजकुमारसे कहा, कि ब्राह्मणोंको यज्ञकी दक्षिणा देनेके लिये मुझे कुछ सुवर्णकी आवश्यकता है। यदि दयापूर्व्वक आप

अपने कण्ठका भूषण दान कर दें, तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। राजपुत्रको, ब्राह्मणोंके लिये कुछ भी अदेय नहीं था। उन्होंने प्रसन्नतापूर्व्वक अपने गलेका हार उतार कर उसी समय दान कर दिया। इधर तो राजकुमार आश्रमकी रक्षा करने लगे और उधर वह दानव उस कण्ठ-भूषणको लेकर उनके पिताके पास पहुंचा और बोला—"राजन्! आपका पुत्र दानवोंके साथ लड़ते लड़ते मर गया! राजकुमारने मरते समय, इस कण्ठ-भूषणको आपके पास पहुँचा देनेके लिये अनुरोध किया था। हम मुनि हैं, इस स्वर्ण-भूषणको लेकर क्या करेंगे? यही सोच-कर विवश हो यह दुस्संवाद सुनाने तथा यह कण्ठ-भूषण देनेके लिये यहां आये हैं।"

इस समाचारको सुनकर राजा और रानी शोकसे अत्यन्त आतुर हो गयीं। राजकुमारकी धर्म्मपत्नी मदालसाने पतिकी मृत्युका समाचार सुनकर अपनी मानवी लीला संवरण कर ली। इस दुस्संवादके सुनते ही राजधानी भरमें शोक छा गया! पर राजा-रानीके हृदय—यह सोचकर कुछ शान्त हुए, कि ब्राह्मणकी रक्षा करनेमें पुत्रकी मृत्यु हुई है! पुत्र-शोक-कातरा जननीने अपने पतिके निकट उस समयके अपने हृदयके भावोंका जो वर्णन किया है, उसे पढ़ कर प्राचीन भारतकी माताओंके उदात्त हृदयका पूरा पता मिलता है। माताने कहा था—

न मे माता न मे स्वसा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेद्दृशी,
श्रुत्वा मुनि-परित्राणे हतं पुत्रं यथा मया।
शोचतां बान्धवानां ये, निःश्वसन्त्यवति दुःखिताः,
म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टा तेषां माता वृथाप्रजाः।
संग्रामे युद्ध्यमाना येऽभीता गोद्विज रक्षणे,
क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यन्ते, त एव भुवि मानवाः।
अर्थिनां मित्रवर्गाश्च, विद्विषाञ्च पराङ्मुखम्,
यो न याति पिता तेन, पुत्री माता च वीरसूः।
गर्भक्लेश स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा,
यदारिविजयी वा स्यात् संग्रामे वा हतः सुतः॥

अर्थात् मुझे अपनी माता या बहिनसे अबतक वैसा सुख नहीं मिला था, जैसा आज यह सुनकर मिला है, कि मुनिकी रक्षा करनेमें पुत्र मर गया। जो लोग, रोगसे गल-पच कर अपने बन्धु-बान्धवोंको शोकमें तड़फते हुए छोड़ कर मरते हैं, उनकी माता, निकम्मी सन्तानकी माता हैं। जो गो-द्विजकी रक्षाके लिये निर्भय हो संग्राममें कूद पड़ता है और वहाँ शस्त्रोंसे घायल होकर विपन्न हो जाता है, पृथ्वीमें वही पुरुष, पुरुष है। याचकों, मित्रों तथा शत्रुओंके आनेपर जो पराङ्मुख नहीं होता है, उसीका पिता पुत्रवान् और माता, वीर-प्रसूता है। जब पुत्र शत्रुओंके विरुद्ध युद्ध करते करते समर-भूमिमें निहत हो जाता है या शत्रुपर विजय प्राप्त कर लेता है, तब माताका गर्भ-क्लेश सहना सफल हो जाता है।

इस प्रकार वह मायावी सबको शोकसमुद्रमें निमग्न कर तथा मदालसाको लोकान्तरमें भेजनेका अपना अभीष्ट पूरा कर कुवलयाश्वके निकट पहुंचा। उस मुनि-वेशधारी कपटीने कुवलयाश्वको—यह कह कर, कि मेरा काम हो गया—बड़ी प्रसन्नता के साथ विदा किया। राजपुत्र वहांसे चलकर शीघ्र ही राजधानीमें पहुंच गये। राजकुमारको राजधानीमें आते हुए देख कर लोगोंके विस्मयका ठिकाना नहीं रहा। सब लोगोंने इसे देवताका प्रभाव समझ अपने मनको सन्तोष दिया और बड़ी प्रसन्नताके साथ राजकुमारको ग्रहण किया! माता पिता और गुरुजनोंका अभिवादन करने पर जब युवराजको सब हाल मालूम हुआ और उनसे लोगोंने मदालसाकी मृत्युका समाचार कहा तब उनके दुःखकी सीमा न रही ऋतध्वजके हितैषी एक नागराजके अलौकिक प्रयत्नसे मदालसाने जीवन-लाभ किया! यों तो राजकुमारके आनेसे ही राजधानी भरमें आनन्द छा गया था; पर युवराज्ञीके जीवन-लाभ करने पर राजपरिवार तथा प्रजाओंके आनन्दमें जो कमी हो रही थी, वह भी पूर्ण हो गयी।

यथाशक्ति पृथ्वीका पालन कर जब राजा शत्रुजित् वनवासी हो गये, तब पुरवासियोंने कुवलयाश्वको सिंहासनासीन किया। राजा कुवलयाश्व भी थोड़े ही दिनोंमें पुत्रके समान प्रजाओंका

पालन कर उनके आनन्द-भाजन बन गये। इसी समय मदालसाके गर्भ से राजाके प्रथम पुत्रका जन्म हुआ। राजाने उस पुत्रका नाम विक्रान्त रखा। जब बालक विक्रान्त रोने लगता था, तब मदालसा कहा करती थी—"हे वत्स, तू शुद्ध है, तेरा कुछ नाम नहीं है, केवल कल्पनाकी सहायतासे अभी तेरा नामकरण कर दिया गया है। तेरा यह शरीर पञ्चभूतात्मक है, न तो तू ही इस देहका है और न यह देह ही तेरी है। फिर किस कारण तू यों रो रहा है? अथवा तू रोता नहीं है और यह ध्वनि तेरे शरीरके आश्रयसे स्वयं निकल रही है! नाना प्रकारके भौतिक गुण और अवगुण तेरी इन्द्रियोंको विकल कर रहे हैं। जिस प्रकार दुर्बल भूतगण, भूतकी सहायतासे अन्न-वारि-दानादि द्वारा सम्बर्द्धित होते हैं, उस प्रकार तेरा क्षय या वृद्धि नहीं होती। यह शरीरआच्छादन मात्र है। इसके शीर्ण होनेसे तू मोह-ग्रस्त न हो। शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेके लिये तेरा यह शरीर—आच्छादन निर्मित हुआ है। पिता, पुत्र, माता, स्त्री, आत्मीय, परकीय यह सब कुछ नहीं है! तू इन सबके फेरमें मत पड़ना। जो मनुष्य विमूढ़ होते हैं, वे ही दुःखको दुःखोपशमका हेतु और भोगोंको सुखका कारण समझते हैं। जो व्यक्ति अविद्याके अन्धकारमें पड़े रहनेके कारण मोहान्धचित्त हैं, वे ही दुःखको सुख समझते हैं। संसारमें जिस रमणीकी सुन्दरताका बखान बड़े जोरोंसे

किया जाता है, वह रमणी वास्तवमें क्या है ? उसके हंसने पर उसकी दन्तपंक्तिको लोग दाड़िमके दाने कहते हैं; पर वास्तवमें वह हड्डी मात्र है, उसकी आंखें तर्जनस्वरूप हैं, उसके पीनोन्नत स्तनादि भी मांसके पिण्डमात्र हैं; अतएव विचार कर देखो, तो रमणियां साक्षात् नरक स्वरूप हैं ! अपने अपने शरीर पर लोगोंकी जैसी ममता रहती है, दूसरेके शरीर पर लोगोंकी वैसी ममता नहीं रहती ! यह लोगोंकी कितनी मूर्खता है !"

राज-महिषी मदालसाका पुत्र ज्यों ज्यों बढ़ने लगा, त्यों त्यों उस कोमल-हृदय बालकको अपनी माताकी इन शिक्षाओंके कारण आत्मबोध होने लगा। माताकी इस शिक्षासे पुत्रके हृदयमें ज्ञानका उदय, ममत्वका त्याग और संसारकी स्पृहासे विरक्ति हो गयी !

यथा समय मदालसाके गर्भसे राजाके सुवाहु तथा शत्रु-मर्दन नामके दो और पुत्र हुए। राजमहिषीने विक्रान्तके समान इन दोनों पुत्रोंको भी आत्मज्ञानकी शिक्षा देना आरम्भ किया, जिसका फल यह हुआ कि ये दोनों लड़के भी निष्काम व्रतके व्रती और कर्मशून्य हो गये। अन्तमे जब चतुर्थ पुत्र हुआ, तब राजा नव कुमारके नामकरणके लिये पधारे। राजाको नामकरणके लिये उद्यत देख देवी मदालसा कुछ हंसी।

यह देख राजाने पूछा, "इस समय तुम्हारे हंसनेका कारण क्या है? यदि मेरा रखा हुआ नाम तुम्हें पसन्द न हो तो तुम स्वयं कोई नाम रख लो"। राजाकी आज्ञानुसार मदालसाने कनिष्ठ कुमारका नाम अलर्क रखा। इस विचित्र नामको सुन कर राजा हंस पड़े और पूछा, कि आखिर इसका मतलब क्या हुआ? इसके उत्तरमें रानी मदालसाने कहा—"नामकरण लोकाचार और कल्पनामात्र है। इसका और कुछ अर्थ नहीं है। आत्मा सर्व्वगत सर्व्वव्यापी, शत्रु तथा रूप-हीन है, इस कारण विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन इन नामोंका भी कुछ अर्थ नहीं है; फिर जब ये नाम अर्थहीन नहीं समझे गये, तो यह नाम क्यों अर्थहीन समझा जा रहा है?" रानीके इस युक्तियुक्त वचनको सुनकर राजा अत्यन्त आनन्दित हुए। रानीने और पुत्रोंकी तरह अलर्कको भी आत्मज्ञानकी शिक्षा देना आरम्भ किया, पर राजाको यह ठीक नहीं जँचा। उन्होंने पुत्रको कर्म्ममार्गकी शिक्षा देनेके लिये रानीसे अनुरोध किया। पति-परायणा मदालसा पतिकी आज्ञाके अनुसार ही पुत्र अलर्कको शिक्षा देने लगी, जिसका फल यह हुआ, कि भविष्यमे राजकुमार एक सुप्रसिद्ध सर्व्वगुणालंकृत नरपति हुए!

मदालसाके उपदेश, विलासमे पड़े हुए देहात्मवादी आलसी पुत्रोंके लिये अमृत स्वरूप हैं। इस समय मदालसाके उपदेशों

पर चलकर भारतवासी दुःखहीन, कर्मठ, आत्मज्ञान तथा लौकिक-ज्ञान-सम्पन्न होकर संसारमें प्रधानता प्राप्त करें, यही लेखककी वासना है।

मदालसाने अपने पुत्रको शिक्षा देते समय कहा था,—"

पुत्र ! वर्द्धस्व मद्भर्तुः मनोनन्दय कर्मभिः।
मित्राणामुपकाराय, दुर्हृदां नाशनाय च ॥
धन्योऽसि रे यो वसुधाम शत्रु—
रेकश्चिरं पालयितासि पुत्र !
तत् पालनादस्तु सुखोपभोगो,
धर्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ॥
धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः,
समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथाः,
मनः परस्त्रिषु निवर्त्तयेथाः ॥

अर्थात् हे पुत्र, तेरी पूरी वृद्धि हो, मित्रोंके उपकार तथा शत्रुओंके नाशके लिये कर्त्तव्योंका अनुष्ठान कर, तू मेरे पतिको आनन्दित कर। हे पुत्र, तू धन्य है; क्योंकि बहुत दिनों तक शत्रुओंसे रहित होकर तू पृथ्वीका पालन करेगा। तेरे पृथ्वीका पालन करनेसे प्रजाएं सुखी हों। प्रजाओंको सुख पहुंचानेसे धर्म्म होगा और वह सब धर्म्म सञ्चय होगा, तब तू अमरत्व पावेगा। प्रत्येक पर्व पर ब्राह्मणोंको तृप्त करना। बन्धु-

बान्धवोंकी अभिलाषा पूरी करना, सदा दूसरेकी भलाईका विचार रखना और परायी स्त्रियोंकी ओर कदापि मन न लगाना ।

यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमर्थैर्द्विजान् प्रीणय संश्रितांश्च ।
स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराययुद्धैररींस्तोषयितासि वीर ॥
बालो मनोनन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमार ।
स्त्रीणां युवा सत्कुल भूषणानां वृद्धो वने वत्स वनेचराणाम् ॥
राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गो विप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः ॥

अर्थात् अनेक प्रकारके यज्ञोंसे देवताओंको, विपुल दानसे विप्रों तथा आश्रितोंको सन्तुष्ट करना । हे वीर, नाना प्रकारके द्रव्योंसे स्त्रियोंको तथा युद्ध द्वारा शत्रुओंको सन्तुष्ट करना । शैशवावस्थामें बन्धुओंका, कुमारावस्थामें सत्कुल-सम्भूता नारियोंका और वृद्धावस्थामें वनवासी होकर वनचरोंका आनन्द भाजन बन । हे पुत्र, तू राजत्व पाकर सुहृदोंको आनन्दित करना, साधुओंकी रक्षाके लिये यज्ञानुष्ठान करना और गो तथा द्विजोंकी रक्षाके लिये युद्धस्थलमें दुष्टों और आततायियोंका नाशकर परलोक गमन करना ।

प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव, ततो भृत्या महीभृता ।
ने पाश्चानन्तर पौरा, विरुद्ध तु ततोऽरिभिः

यश्चेत न विजित्यैव, वैरिणो विजिगीषते।
सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रुवर्गेण वाध्यते॥
तस्मात् कामादयः पूर्व्वं जेयाः पुत्र महीभुजा,
तज्जये हि जयोऽवश्यं राजा नश्यति तैर्जितः।
काम क्रोधश्च लोभश्च, मदो मानस्तथैव च,
हर्षश्च शत्रवोह्यते विनाशाय महीभृताम्॥

अर्थात् नरपतिको उचित है, कि पहले अपनेको, उसके वाद मन्त्रियोंको, उसके वाद पुरवासियोंको वशीभूत करे। जव ये सव वशीभूत हो जायें, तव शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेका प्रयत्न करे। जो नृपति इन सवको विना जीते ही शत्रुओं पर विजय पानेकी इच्छा करता है, वह अजितात्मा महीपति अमात्यो द्वारा विजित होकर शत्रुओंके वशीभूत हो जाता है। हे पुत्र, इसलिये पहले कामादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर। इनपर विजय प्राप्त कर लेनेसे, शत्रुओंपर विजय प्राप्त होना अनिवार्य्य हो जाता है।

कामप्रशक्तमात्मान, स्मृत्वा पाण्डुम् निपातित।
निवर्त्तयेत्तथाः क्रोधादनुह्लादम् हतात्मजम्॥
हतमैल तथा लोभादम्भाद्वेन द्विजैर्हतम्।
मानादनायुषापुत्रं, वलि हर्षात् पुरञ्जयम्॥
येभिर्जितैर्जितं सर्वं, मरुत्तेन महात्मना।
स्मृत्वा विवर्जयेदेतान्, दोषान् स्त्रीयानमहीपतिः॥

कीटकस्य क्रियां कुर्य्याद् विपत्तौ मनुजेश्वरः ।
चेष्टां पिपीलिकानाञ्च काले भूपः प्रदर्शयेत् ॥
ज्ञेयाग्निविस्फुलिङ्गानां, बीज-चेष्टा च शाल्मलेः।
चन्द्रसूर्य्य स्वरूपेण, नित्यार्थे पृथिवीक्षिता ॥

अर्थात् कामके वशीभूत होकर राजा पाण्डु विनष्ट हो गये, क्रोधसे अनुह्लाद पुत्र-रत्न से वञ्चित हो गये, लोभसे ऐल और मदोन्मत्त होकर राजा वेणु, ब्राह्मणो द्वारा काल कवलित हो गये। अनायुषाका पुत्र बलि, अभिमानसे नष्ट हो गया और पुरञ्जय हर्षके वशीभूत हो मृत्युग्रस्त हुआ । महाराज मरुत्‌ने उन काम क्रोधादि रिपुओंको पराजित कर समस्त संसारको अपने वशमें किया था। राजाओंको उचित है, कि इन उदाहरणोंको देखकर अपने दोषोको दूर करें । नरपतियोंको उचित है, कि शत्रुओंके साथ वीरोंके जैसा व्यवहार करें अर्थात् जिस प्रकार कोई कोई-वाह्यिक लक्षण न दिखा कर द्रव्योंको अन्तःसार-हीन कर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देते है, उसी प्रकार इन्हें भी अपने शत्रुओंको अन्तःसार-शून्य बना देना चाहिये। अग्निस्फुलिङ्ग और सेमरके बीजकी तरह राजाओंको दिगदिगन्त तक अपनी कीर्त्तिके द्वारा व्याप्त हो जाना चाहिये। जिस प्रकार चन्द्र और सूर्य्य दिन प्रति दिन उदय-शील हैं और कभी अपनी तीक्ष्ण तथा कभी मृदु किरणोंको प्रदान कर गृहस्थोंके घरकी बातोंसे परिचित

होते हैं उसी प्रकार नरपतियोंको भी शत्रुओंके सम्बन्धमें जानकार होना चाहिये ।

बन्धकी पद्मशरभ शूलिका गुर्विणी स्तनात्
प्रज्ञा नृपेन चादेया, तथा गोपालयोषितः ।
शक्रार्क यमसोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः
रूपाणि पंच कुर्व्वीत महीपालन कर्मणि ॥
यथेन्द्रश्चतुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम् ।
आप्याययेद् तथा लोकान् परिहारैर्महीपतिः ॥
मासानष्टौ यथा सूर्य्य स्तोयं हरति रश्मिभिः ।
सूक्ष्मेनेवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिकं नृपः ॥
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्तकाले नियच्छति,
तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत् ॥

भावार्थ–वेश्या पद्म, शरभ, गुर्विणी स्तन और गोपाङ्गनाओंसे राजा ज्ञान प्राप्त करे अर्थात् वेश्याके समान परपुरुषके चित्तका विनोदन, पद्मके समान चित्त-परितोषन, शरभके समान विक्रमशील, शूलिकाके समान शत्रु ध्वंस, गर्भिणीस्तनके समान भावी सन्तानोंके लिये दुग्धका संग्रही बने। जिस प्रकार गोपांगनाएं एक दूधसे नाना प्रकारकी चीजें बनाती हैं, उसी प्रकार राजा भी कल्पनापटु होकर नाना प्रकारके कार्य्योंकी अवतारणा करे। पृथ्वीके पालनका काम करते समय नरपति, इन्द्र, सूर्य्य, यम, चन्द्र और वायु इन पंच देवता-

ओंके आचरणका अनुकरण करे अर्थात् जिस प्रकार इन्द्र चार मास वर्षा करके पृथ्वीको हरी भरी रखता है, उस प्रकार राजा, दानादिसे प्रजाओंको आनन्दित रखे। जिस प्रकार सूर्य आठ मास अपनी किरणों द्वारा पृथ्वीके जलका शोषण करता है, उसी प्रकार नरपति भी सूक्ष्म उपायसे शुल्कादि संग्रह करे। यम जिस प्रकार काल प्राप्त होनेपर प्रिय अप्रिय सबको निग्रह करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रिय अप्रिय, दुष्ट अदुष्ट सबके लिये समदर्शी हो।

पूर्णेन्दुमालोक्य यथा प्रीतिमान्जायते नरः
एव यत्र प्रजाः सर्वाः निवृत्तास्तच्छशिव्रतम्॥
मारुत सर्वभूतेषु निगूढश्चरति यथा।
एव नृपश्चरेच्चारै पौरामात्यादि बन्धुषु॥
न लोभाद्वा न कामाद्वा नार्थाद्वा यस्यमानसम्
यथानयै कृष्यते वत्स, स राजा स्वर्ग मृच्छति॥
उत्पथा ग्राहिणो मूढान् स्वधर्माचलतो नरान्।
यः करोति निजे धर्मे, स राजा स्वर्गमृच्छति॥

भावार्थ—पूर्ण चन्द्रको देखकर जिस प्रकार सब लोग आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार जिस नरपतिके शासनसे प्रजा प्रसन्नता प्राप्त करती हैं, वही नरपति शशिव्रतधारी हैं—चन्द्रमाके समान संसारका आह्लादक हैं! जिस प्रकार वायु, गुप्त रूपसे सभी जीवोंमें विचरण करता है, उसी प्रकार राजा भी अपने चरों

द्वारा पौर, अमात्य और बान्धवोंके चरित्र आदिसे अवगत होता है। काम, लोभ, अर्थ या अन्य किसी वस्तुसे जिनका मन डांवाडोल नहीं होता है, हे वत्स, वे ही महीपति मरनेपर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। जो उत्पथगामी या घूंस आदि लेने वाले मूढ़ों और स्वधर्म भ्रष्ट लोगोंको अपने धर्ममें ले आते हैं—धर्मपथ पर आरूढ़ करते हैं वे ही नृपति कालवश होकर स्वर्गको प्राप्त होते हैं।

वर्णा धर्मानसीदन्ति यस्य राज्ये तथाश्रमा
वत्स तस्य सुखं प्रेत्य परत्रेह च शाश्वतम्।
एतद्राज्ञः परं कृत्यं, तथैतत् सिद्धि कारणम्
स्वधर्मस्थापनं नृणां चाल्यते यत् कुबुद्धिभि.।
पालनेनैव भूतानां, कृतकृत्यो महीपति
सम्यक् पालयिता भागं, धर्मस्याप्नोति यत्नतः।
एवं यो वर्त्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्यरक्षणे,
स सुखी विहरन्येव, शक्रस्येति सलोकताम्।

भावार्थ—हे वत्स, जिस राजाके राज्यमें वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म किसी प्रकारसे भी अवसाद-ग्रस्त नहीं होते हैं, वह इस लोक तथा परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त करता है। बुद्धिमान व्यक्तियोंके उपदेशानुसार कार्य करना और सबको अपने अपने धर्मपर आरूढ़ करना राजाका परम धर्म है और यही कारण है, जिससे उसे अपने कार्य्यमें सफलता मिलती है।

प्रजाओंका भलीभांतिसे पालन कर अच्छे नृपति, अपनेको कृत-कृत्य समझते है और उनके धर्मके अंशीदार होते हैं। जो नृपति चातुर्वर्ण्यकी रक्षाके लिये इस प्रकार नियमानुकूल चलते हैं, वे इस लोकमें परम सुख प्राप्तकर अन्तमें इन्द्रलोकको पाते हैं। इस प्रकार आश्रम और वर्ण-धर्म विषयक नानाप्रकारके उपदेश देकर राजमहिषी मदालसाने कहाः—

दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात् क्रुद्धं चैन प्रसादयेत्।
परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम्॥
मर्म्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत्।
दम्भाभिमानतीक्ष्णानि न कुर्वीत विचक्षणः॥
मूढोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान् मायिनस्तथा।
न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च, नोपहासैर्विदूषयेत्॥
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च, नाविनीतैश्च पण्डितः।
गच्छन्मैत्रीं न चौर्य्यादिशीलैर्न च चौर्यादिदूषितैः॥
न चाति व्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः।
न बन्धकीभिर्न नृभिर्बन्धकीपतिभिस्तथा।
न सख्यं शङ्किभिर्नित्यं न च दैव परैर्नरैः॥
कुर्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः।
प्राज्ञैरपिशुनैः शक्तैः कर्मण्युद्योगभागिभिः।
वेदविद्यारतस्नातैः सहासीत सदा बुधः॥

भावार्थः—गुरुजनोंकी दुष्कृतिको किसी पर प्रकट नहीं करना। यदि गुरुजन क्रोधित हो जायं तो चाहे जिस प्रकारसे

हो, उनको प्रसन्न करना चाहिये। गुरुओंकी निन्दा सुनना भी पाप है। किसीको भी मर्म्म-पीड़ा देना उचित नहीं। मनुष्यों-पर आवेश नहीं करना, किसीके साथ नीचता नहीं करना, दम्भ, अभिमान और क्रूर व्यवहारसे अलग रहना, बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है। मूढ़, उन्मत्त, विपन्न, विरूप, मायावी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, इन व्यक्तियोंकी हंसी उड़ाकर उन्हें दुःख पहुंचाना उचित नहीं। उद्धत, उन्मत्त, मूढ़, अविनयी, असच्चरित्र, चौर्य्या-दि दोषोंसे दूषित, अपरिमित व्ययी, शत्रु, बन्धकी—वेश्या, हीन, वेश्या-स्वामी, नीचाशय, निन्दित, सर्व्वदा आशङ्कित, और दैव-परायण, इन्हीं लोगोंके साथ मित्रता करना विचक्षण व्यक्तियोंका कर्त्तव्य नहीं है। साधुओंके साथ ही मित्रता करनी चाहिये। प्रज्ञावान्, अपैशुन्य, शक्तिमान, और नित्य उद्योग करनेवाले लोगोंसे मित्रता करना उचित है।

यद्यापि कुर्व्वतो नात्मा, जुगुप्सामेतिपुत्रक—
तत्कर्त्तव्यमशङ्क्रे न यन्नगोप्यं महाजने।

हे पुत्र, जिन कार्य्योंसे आत्मा, लज्जित नहीं होती है, और जो बातें महात्माओंके आगे गोपनीय नहीं हैं, वैसेही कामोंको निःशङ्क होकर करना।

देवता पितृ सच्छास्त्र' यज्ञ मन्त्रादि निन्दकैः।
तदास्मात्पुत्र निष्कृष्य, मद्दत्ताङ्गुरीयकात्।
कृत्वात्तु स्पर्शनालाप, शुद्ध्येतार्क विलोकनात्॥

भावार्थः—जो मनुष्य, देवता पितृ, अच्छे शास्त्र, यज्ञ मन्त्रादिकी निन्दा करते हैं, हे पुत्र, उनके साथ वार्त्तालाप, या उनका स्पर्श करनेसे, मेरी दी हुई अंगूठीके द्वारा सूर्य्य नारायणके दर्शन करनेपर शुद्ध होना।

पूर्व्व पुरुषोंकी निन्दा श्रवण करनेसे अपनी शक्तियोंपर सन्देह होने लगता है, फिर धीरे धीरे सारी शक्तियां नष्ट हो जाती हैं। जो अपने पूर्व्वजोंकी निन्दा श्रवण करता है, उस अधम पुरुषसे ऐसा कोई भी नीच काम इस संसारमें नहीं है, जो न हो सके। किसीको मानव-धर्म्मसे च्युत करनेके लिये, उसके शास्त्रोंकी अपकृष्टता उसके हृदयमें बद्धमूलकी जा सके तो सुविधाके साथ उसको धर्म भ्रष्ट किया जा सकता है। धर्मप्रचारक इस बातको भली भांति समझते थे इसलिये वे शास्त्र निन्दक विधर्मियोंके वध करनेमें भी पीछे पांव नहीं रखते थे। कोमल प्रकृतिके बालक बालिकाओंकी रक्षाके लिये इस विषयपर विशेष ध्यान देना चाहिये। सुरक्षणीय बालक बालिकाओंके सुरक्षित नहीं होनेसे, देशमें नाना प्रकारके अत्याचार प्रबल वेगसे बढ़ रहे है। स्नेहमयी जननीने आलस्यसे पुत्रकी रक्षा करनेके लिये, तनयकी कामभोग-वासनाको निवृत्त करनेकी इच्छासे अन्तिम उपदेश इस प्रकार दिया थाः—

यदा दुःख मसह्यन्ते प्रिय बन्धु वियोगजम्
यद्वाथोद्भवं वापि, वित्तनाशात्मसम्भवम्।

भवेत्तत् कुर्व्वंतोराज्यं गृहधर्मावलम्बिनः
दुःखायतन भूतोहि, ममतृवालम्बिनो गृही,
वाच्यते शासन पट्टे,सूत्त्माक्षर निवेषितम् ॥

भावार्थः—हे पुत्र, गृहस्थ, सर्व्वदा ममत्वपरायण होते हैं। सुतरां, सहज ही दुःखोंके आधार स्वरूप हो जाते हैं; इस कारण मैं कहती हूं, कि गृहधर्मावलम्बी होकर राज्यका शासन करते हुए, जिस समय तुम्हें प्रिय बन्धुवियोग जनित अथवा अर्थक्षय जनित, दुस्सह दुःख उपस्थित होगा, उस समय मेरी दी हुई इस अंगूठीके भीतरसे पत्र बाहर करके, उसके भीतर जो छोटे-छोटे अक्षरोंमें शासन लिखा है उसे पढ़ना। यह कहकर मदालसाने, सोनेकी अंगूठी देकर पुत्रको गृहस्थोंके उपयुक्त आशीर्वाद दिया। इसके बाद कुवलयाश्व, पुत्रको राज्य प्रदान कर देवी मदालसाके साथ वानप्रस्थाश्रमका अवलम्बन करते हुए, तपस्याके लिये वनमें चले गये।

बहुत दिनों तक न्यायानुसार राज्यका पालन करनेपर भी महाराज अलर्ककी भोग वासना निवृत्त नहीं हुई और न धर्मार्थ उपार्जनके प्रति उनको विराग-बुद्धि हुई। अलर्कके सुबाहु नामक विरागी भ्राता थे, जो वनमें रहते थे। उन्होंने विषयमें निमग्न भ्राता, तत्व-ज्ञानको प्राप्त करे, इसके लिये बहुत सोच-विचार कर प्रबल पराक्रमी काशी-नरेशके साथ मिल राज्यको अपने अधिकारमें करनेको उनके पास दूत भेजा।

क्षात्रधर्म्मको जानने वाले अलर्कने काशीराजके दूतको जवाब देकर कह भेजा कि मेरे बड़े भाई मेरे पास आकर प्रणय पूर्व्वक राज्यकी प्रार्थना करें। आक्रमणके भयसे मैं थोड़ी भी जमीन नहीं दूंगा। मतिमान् वीर्य्यधन, सुबाहुने क्षत्रियधर्म्म-विरुद्ध प्रार्थना न कर, काशी-राजकी सेनाके साथ अपने भाईके राज्यपर आक्रमण किया और दुर्गपाल प्रभृतिको मिलाकर अपने भाईको विपद्में डाल दिया। अलर्क दिन दिन क्षीण-कोष और हीन बल होकर विषादग्रस्त हो गये। जननी मदालसाने जिस अंगूठीके सम्बन्धमें कहा था, उन्हें इस समय उसका स्मरण आया। अंगूठीके बीचमें जो अनुशासन-पत्र निकाल कर देखा, तो मालूम हुआ, कि उसमें स्पष्टाक्षरोंमें लिखा है:—

सङ्गः सर्वात्मनात्याज्य सचेत्त्यक्तुं न शक्यते ।
ससद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गोहि भेषजम् ॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुञ्चेच्छक्यतेनसः ।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्य्यं, सैव तस्यापि भेषजम् ॥

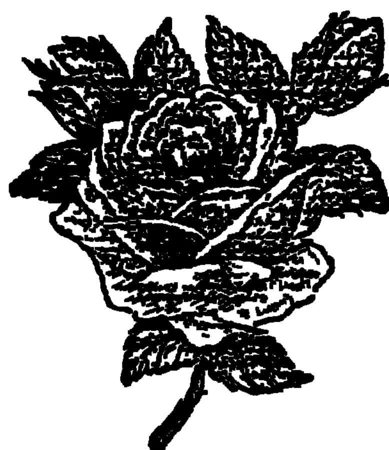
जननीके लिखे हुए अनुशासन पत्रको पढ़ते ही उनका हृदय पुलकित हो गया और दोनो आंखें आनन्दसे उत्फुल्ल हो उठीं। अनुशासन-पत्रमें लिखा था, कि "सर्व्वान्तः-करणसे सङ्ग परित्याग करना। यदि सङ्ग त्यागमें असमर्थ हो, तो वह सङ्ग साधुओंके साथ ही करना कर्त्तव्य है। क्योंकि

साधु सङ्ग ही सांसारिक रोगोंकी परमौषध है। सर्व्वान्तः-करणसे काम परित्याग करना, यदि वह परित्याग करनेमें अक्षम हो तो मुक्तिकी कामना करना। क्योंकि वही उसकी औषध है।

अलर्क, जेष्ठपुत्रको राज्य प्रदान करके तुरन्त आत्मज्ञानके लिये वनको चले गये और स्वल्प समयमें ही आत्मासे साक्षात्कर निर्व्वाण पदको प्राप्त कर लिया।

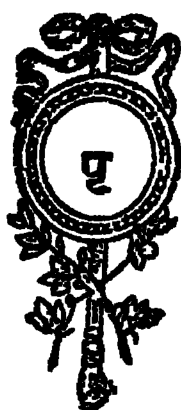
प्राचीन कालकी माताएं स्तन-दानके साथ पुत्रोंको इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी बातोंमें निपुण करती थीं। दुःखप्रद विषयानन्द भोगनेके बाद, जिसमें पुत्र, आत्मज्ञान-रूप परमानन्दको लाभ करनेमें समर्थ हो, इस विषयमें माताएं उदास नहीं थीं, उनका इधर पूरा ध्यान रहता था। सभी प्रकारकी साधनाओंका श्रेष्ठ फल, "किसी दूसरेसे जिसमें भयका संचार न हो, पुत्र जिसमें अत्युत्कृष्ट सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ हो—पुत्र हितकारिणी माता, उस विषय पर विशेष ध्यान रखती थी। पुत्र वीरकी नाई अनात्मज्ञान और आत्मज्ञान—उभयज्ञान लाभ करनेमें समर्थ हो, इसके लिये वह सदा सचेष्ट रहती थी। इस समयकी माताएं भी यदि अपने पुत्रोंको अभय प्रदान करें, भीति विहीन बनावें, तो अवश्य मुक्ति करतलगत होगी। मुक्तिके लिये इसके सिवाय, दूसरा

कोई उपाय नहीं है। भय-विह्वल विमूढ़चेता अधम प्रकृतिके मनुष्य, समाज या देशके मूल स्वरूप हैं। जबतक माताएं पुत्रोंके इस मलको दूर करनेमें समर्थ न होंगी, तबतक देश पवित्र नहीं होगा।



गांधारी





पृथ्वीके इतिहासमें गान्धारीके समान स्त्री रत्न दूसरा दिखाई नहीं देता। विवाहके बाद जब गान्धारीने सुना कि पति धृतराष्ट्र जन्मान्ध हैं, तब अपनी आंखोंपर पट्टी बांधकर वह आजीवन अपनी इच्छासे अन्धी बनी रही। इस प्रकार पतिके प्रति अनुरागका उदाहरण शायद ही कोई हो। गान्धारीने अपने पुत्र दुर्योधनको जो उपदेश दिया था, उससे उसकी विचार-शक्ति दूरदर्शिता और न्याय परायणताका पूर्ण परिचय मिलता है। जिस समय दुर्योधनने किसीकी बातों पर ध्यान नहीं दिया, उस समय कुरु-वृद्धोंने सोचा, कि गान्धारीके उपदेशसे दुर्योधन कुछ संभल सकता है। माताकी शिक्षापर वह अवश्य कान देगा। इस एक बातसे भी यह मालूम होजाता है, कि कुरु-कुल-वृद्धोंकी गान्धारी पर कैसी श्रद्धा थी, कैसा विश्वास था। यद्यपि दुर्योधनको गान्धारीका उपदेश देना पत्थरपर अनाज बोनेके समान व्यर्थ हुआ, फिर भी वर्त्तमान

कालकी माताएं गान्धारीके समान दूरदर्शिनी हों तो इसमें सन्देह नहीं, कि वे अपने घरकी आशान्ति दूर करनेमें बहुत कुछ समर्थ होंगी। हम यही चाहते हैं, कि वर्त्तमान कालकी माताएं, गान्धारीके उपदेशपर ध्यान पूर्व्वक विचार करें। माता गान्धारीने दुर्योधनको कहा थाः—

दुर्योधन निबोधेद, वचन मम पुत्रक !
हित ते सानुबन्धस्य, तथायत्यां सुखोदयम्।
दुर्योधन यदाह त्वां, पिता भरत सत्तमः।
भीष्मो द्रोणा कृप क्षत्ता सुहृदां कुरुतद्वचः।
भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचिति कृता
भवेत्द्रोणमुखानाञ्च, सुहृर्दा साम्यता त्वया
नहि राज्य महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते
अवाप्तु रक्षितुञ्चापि भोक्तुं वा भरतर्षभ
न ह्यवशेन्द्रियोराज्यमश्नुयाद्दीर्घमन्तरम्
विजितात्माप्तु मेधावी, स राज्यभिपालयेत्॥

भावार्थः—हे दुर्योधन, तू एकवार मेरी इस बातको समझ। यह बात आगे चलकर बन्धुओंके साथ तेरे सुखोदयकी कारण होगी। हे पुत्र, तेरा पिता भरत सत्तम धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य्य, विदुर प्रभृति अन्यान्य सुहृद्गण, तुम्हें जो कुछ कहें, उसका पालन कर। तुम्हारे शान्त होने पर भीष्म, धृतराष्ट्र और मेरी तथा द्रोणादि सुहृदवर्गकी पूजा होगी। हे

महाप्राज्ञ, अपनी कामनासे कभी न तो राज्यकी प्राप्ति, न रक्षा, और न भोग ही होता है। जिनकी इन्द्रियां वशमें नहीं, वे बहुत दिनों तक राज्यका भोग नहीं कर सकते। विजितात्मा, मेधावी पुरुष ही राज्यका पालन या भोग करनेमें समर्थ होता है।

काम क्रोधौहि पुरुषमर्येभ्यो व्यपकर्षतः
तौ तु शत्रू विनिर्जित्य राजा विजयते महीम्।
लोकेश्वर प्रभुत्वं हि महदेतत् दुरात्मभिः
राज्य नामेप्सितं स्थानमशक्यमभि रक्षितुम्
इन्द्रियाणि महत् प्रेप्सुर्नियच्छेदर्थ धर्मयो.
इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिः वर्द्धतेऽग्निरिवेन्धनैः
अविधेयानि हीमानि, व्यापादयितुमप्यलम्
अविधेया इवा दान्ता हया पथि कुसारथिम्।
अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते
अमित्रान् वा जितामात्य सोऽवशः परिहीयते॥
आत्मानमेव प्रथम द्वेष्यरूपेणयोजयेत्
ततोऽमात्यान मित्रांश्च नमोघ विजिगीषते।

भावार्थ—काम और क्रोध मनुष्योंको अर्थके द्वारा सदा अपनी ओर खींचते हैं। जो भाग्यवान राजा इन दो विषय शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ होते हैं, वे इस पृथ्वीको विजय करनेके अधिकारी होते हैं। लोकेश्वर होकर प्रभुत्व करना अत्यन्त कठिन काम है। दुरात्मा भले ही सहजमें राज्य-पद

पानेकी अभिलाषा कर सकते हैं, किन्तु राज्यकी रक्षा करना उनके लिये असम्भव है। जो व्यक्ति इस उच्च पदकी आकांक्षा करें, उन्हें अपनी सारी इन्द्रियोंको अर्थ और धर्मके विषयमें पहले संयत कर लेना चाहिये। जिस प्रकार ईंधन पानेसे आग और प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार इन्द्रियोंके संयत होनेसे मनुष्योंकी वृद्धि होती है। और अशिक्षित अश्व जिस प्रकार अनाड़ी सारथीको नष्ट कर सकता है, उसी प्रकार असंयत इन्द्रियां पुरुषोंको भी ध्वंस करनेमे समर्थ होती हैं। अत्माको विना जय किये, जो अमात्य-जय, अथवा अमात्यको जय नहीं करके जो शत्रुको जय करना चाहते हैं; वे मनुष्य, विवश होकर सम्पत्तिहीन हो जाते हैं। जो पहले अपने दुर्गुणोंका विचार करके उसके वाद, अमात्यके दुर्गुणोंका विचार और संशोधन करते हैं वे व्यर्थ-मनोरथ नहीं होते।

वश्येन्द्रिय जितामात्यं धृतदण्ड विकारिषु
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यर्थं श्रीनिषेवते।
क्षुद्राक्षेनेवजालेन झषावपिहितावुभौ,
कामक्रोधौ शरीरस्थौ प्रज्ञानं तौ विलुम्पतः।
याभ्यांहि देवाः स्वर्य्यातुः स्वर्गस्यपिदधुर्मुखम्
विभ्यतोऽनुपरागस्य कामक्रोधौस्म वर्द्धितौ
कामक्रोधस्य लोभस्य, दम्भ दर्प च भूमिपः
सम्यग् विजेतु यो वेद स महीमभिजायते॥

सतत निग्रहे युक्त इन्द्रियाणां भवेन्नृपः
ईप्सन्नर्थञ्च धर्म्मञ्च द्विषताञ्च पराभवम्

भावार्थः—राज्यलक्ष्मी : जितेन्द्रिय, जितामात्य, अत्याचारियोंके लिये दण्डधारी, समीक्ष्यकारी और धीरोंको दृढ़तासे अपनाती है। पुरुषको प्रज्ञाका लोप करनेके लिये काम और क्रोध, ठीक उस प्रकार हैं जिस प्रकार जालके छोटे छोटे छेदोंके लिये दो बड़ी मछलियां। काम और क्रोधसे भीत देवता, राग। द्वेष-विवर्द्धित स्वर्ग जानेको उद्यत मनुष्योंके लिये स्वर्गका मार्ग रोक देते हैं। उन मनुष्योंके बढ़े हुए काम और क्रोध ही इसके कारण है। काम' क्रोध लोभ, दम्भ दर्प प्रभृति रिपुओंको जो महीपति हर एक तरहसे दमन करते है, वे इस पृथ्वी मंडलको भी जीत सकते है। धर्मार्थ लिप्सु, और शत्रुको विजय करने वाले महीपतिको उचित है, कि सदैव इन्द्रियोका निग्रह करनेमें तत्पर रहे।

कामाभिभूत क्रोधाद्वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते,
स्वेषु चान्येषु वा तस्य, न सहायाभवन्त्युत ॥
एकीभूतैर्महाप्राज्ञै शूरैररि निवर्हणै
पाण्डवै पृथ्वीं तात भोक्ष्यसे सहित सुखी ॥
यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः
आहतुस्तात तत्सत्यमजेयौ कृष्ण पाण्डवौ ॥

प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्ट कारिणं
प्रसन्नोऽहि सुखायस्यादुभयोरेवकेशव
सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने।
प्राज्ञानां कृतविद्यानां, स नर शत्रु नन्दनः।

भावार्थः—काम और क्रोधसे अभिभूत होकर जो आत्मीय स्वजन या और किसीके साथ कपटाचरण करते है, उनको बहुत सहायता मिलनेको सम्भावना नही रहती। हे पुत्र, एकता-सूत्र से ग्रथित महाप्राज्ञ शौर्यशाली शत्रुनाशक पाण्डवोंके साथ मिलकर रहोगे तभी सुखसे पृथ्वी भोग सकते हो। हे तात, शान्तनुतनय भीष्म और महारथी द्रोणाचार्य्यने तुम्हे जो जो बातें कही हैं, वे सब सच्ची है, कृष्ण और धनञ्जयको पराजित करनेकी सामर्थ किसीमें नहीं है, अतएव क्लिष्टकर्मा महाबाहु कृष्णको शरण लो। केशवके प्रसन्न होनेसे दोनो पक्षका कल्याण होगा। जो मनुष्य प्राज्ञ, कृतविद्य हितकामी सुहृदोंके शासनमे नहीं रहते, उनको बातें नहीं मानते, वे शत्रुके आनन्दको बढ़ाते हैं।

न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुत सुखम्
न चापि विजयो नित्य मा युद्धे चेतआधिथा
भीष्मेन हि महाप्राज्ञ, पित्राते वाह्लिकेन च
दत्तोंश पाण्डु पुत्राणां, भेदात्भीतैररिन्दम

तस्य चैतत् प्रदानस्य फलमद्यानुपश्यसि।
यद्भुङ्क्षे पृथ्वीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम्
प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम!
यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्द्धं महीक्षिताम्।
अलमर्द्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्यजीवनम्
सुहृदां वचने तिष्ठन् यश प्राप्स्यसि भारत।

भावार्थः—हे पुत्र! युद्धमें कुछ भी कल्याण नहीं है, उसमें न तो धर्म ही है और न अर्थ ही मिलता है। उससे सुखकी आशा कहां। युद्धमें जय ही होगी, इसका भी कोई निश्चय नहीं। ऐसी अवस्थामें युद्धके लिये प्रस्तुत न हो। हे अरिन्दम! पाण्डवोंके साथ, विरोध होनेके भयसे भीत हो। तुम्हारे पिता भीष्म और वाह्लिकने उनके प्राप्य अंशको दे दिया था। इस समय उन वीरोंकी सम्पूर्ण वसुन्धराका भोग कर रहे हो, उस का फल भी तुम अनुभव कर रहे हो! हे प्राज्ञ, यदि अमात्योंके साथ अर्द्ध राज्य भोग करनेको तुम्हारी इच्छा हो तो आधा राज्य तुम पाण्डवोंको दे दो। आधी पृथ्वी तुम्हारे लिये काफी है। हे भारत, सुहृदोंकी बात मानोगे, तो तुम्हें यश मिलेगा।

श्रीमद्भिरात्मवद्भिस्तैर्बुद्धिमद्भिः जितेन्द्रियैः
पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन् महतःसुखात्।

निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम्
स्वमंशम् पाण्डुपुत्रेभ्य प्रदाय भरतर्षभ।

अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाकृत
शमयेन महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम्।

न चैव शक्त पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि
सूतपुत्रो दृढ़क्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते।

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनञ्जये
धृष्टद्युम्ने च स क्रुद्धे नस्यु सर्वा प्रजा ध्रुवम्।

भावार्थः—हे पुत्र! श्रीमन्त, धृतिमन्त, बुद्धिमन्त जितेन्द्रिय पाण्डवोंके साथ युद्ध करोगे, तो तुम महत् सुखसे वञ्चित हो जाओगे। हे भरतर्षभ! पाण्डवोंको उनका भाग देकर सुहृदोंका क्रोध दूर कर राज्यका शासन करो। हे वत्स! तुमने पाण्डवोंको तेरह वर्षतक राज्यच्युत करके, उन लोगोंका जो अपकार किया है वही यथेष्ट है। हे महाप्राज्ञ, इस समय काम क्रोधसे बढ़े हुए उस अपकारका मार्जन करो, तुम कुन्तीके पुत्रोंका अर्थ अपहरण करनेकी इच्छा रखते हो, परन्तु तुम्हारी इस इच्छाकी कभी पूर्त्ति नहीं होगी। केवल तुम्हीं नहीं, दृढ़क्रोधी सूतपुत्र अथवा परम क्रोधी तुम्हारा भ्राता दुःशासन कोई भी अपनी इस नीच इच्छाकी पूर्त्ति नहीं कर सकेंगे। बीचमे होगा यही कि भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न जब क्रोधित

होंगे, तो पृथ्वीकी प्रजा नष्ट हो जायंगी—यह बात बिल्कुल सत्य है।

अमर्षवशमापन्नो मा कुरूं स्तात जीवनः
वृथा हि पृथिवी कृत्स्नो मा गमत्त्वत्कृते वधम्।
यच्चत्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोण कृपादयः
योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतदद्योपपद्यते॥
समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानञ्च विदितात्मना
पाण्डवेष्वथ युष्मासु धर्मस्त्वभ्यधिकस्तत।
राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम्
नहि शक्ष्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम्।
न लोभादर्थसम्पत्ति र्नराणामिह दृश्यते
तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ॥

भावार्थः—हे पुत्र! क्रोधके वशीभूत होकर कुरुवंशका ध्वंस नहीं करना। यह समग्र पृथ्वी तेरे कारण नष्ट न हो, इसका खयाल रखना। हे मूढ़! तुम जो सोचते हो, कि भीष्म द्रोण, कृप प्रभृति वीर अपनी सारी शक्तिके साथ तुम्हारी ओरसे युद्ध करेंगे, किन्तु यह हो नहीं सकता। क्योंकि पाण्डवों तथा तुम्हारे ऊपर उन विदितात्मा महारथियोंका स्नेह और सम्बन्ध समान है। विशेषतः धर्म सबसे अधिक प्रबल है। यद्यपि राजपिण्डका खयाल कर ये लोग प्राण देनेको तय्यार भी हो जायंगे तो भी ये युधिष्ठिरको क्रोधकी दृष्टिसे नहीं देखेंगे। हे

तात ! मनुष्य लाभसे कहीं भी अर्थ और सम्पत्ति नहीं प्राप्त करता है। अतएव हे भरतर्षभ, लोभसे विरत हो और शान्त हो !

गान्धारी देवीका यह अमूल्य उपदेश, विषय-निमग्न मनुष्योंके लिये शान्ति-पथका प्रदर्शक हो।



कुन्ती ।





न्ती प्राचीन भारतवर्षकी एक अपूर्व स्त्री रत्न है। कुन्तीदेवी यदुवंशी शूरसेनकी कन्या और वसुदेवकी बहन थीं। इनका असली नाम पृथा था। शूरसेनने अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार, अपने पिताकी बहनके पुत्र अनपत्य कुन्तीभोजराजको, अपनी प्रथम कन्या पृथाको अर्पण किया था। कुन्तिभोजके नामानुसार पृथा, कुन्ती नामसे विख्यात हुई। कन्यावस्थामें महर्षि दुर्वासाकी सेवाकर इन्होंने उनको प्रसन्न कर लिया। इससे कुन्तीकी संयमप्रधान कार्य्य-निपुणता झलकती है। इसी सेवाके फलसे उन्होंने ऋषिसे एक मन्त्र पाया।

सुख-दुःखमयी अनेक घटनाओंसे पूर्ण उनका जीवनवृत्तान्त सभी अवस्थाओंमें उनके महत्वका परिचायक है। लाक्षागृह जलनेके बाद एकचक्रा नगरीमे आपने विपन्न ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अपने विपद्‌कालके अवलम्ब, एकमात्र आशा-स्थल भीमको राक्षसके भोजनार्थ भेजा था। यद्यपि युधिष्ठिरने माता कुन्तीके इस भयङ्कर प्रस्तावका विरोध किया था; फिर

भी माताकी अकाट्य युक्तियोंसे विवश होकर अन्तमें उन्हें भी कुन्तीदेवीके प्रस्तावसे सहमत होना पड़ा!

कुरुक्षेत्रके युद्धके पूर्व भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा पुत्रोंको उत्तेजित करनेके लिये आपने नाना प्रकारके वीर रसोद्दीपक उपदेश दिये थे। जिस समय धृतराष्ट्र वनमें गये थे, उस समय कुन्ती भी उनके साथ गयी थीं। दावानलमें महाराज धृतराष्ट्र आदिके साथ उन्होंने भी अग्निमे अपनी जीवन-लीला संवरण की।

भीमको वकका वध करनेके लिये भेजनेको प्रस्तुत कुन्तीने युधिष्ठिरको अपने विचारका विरोधी पाकर कहा था:—

युधिष्ठिर न सन्ताप स्त्वया कार्यो वृकोदरं,
न चायं बुद्धिदौर्बल्यात् व्यवसाय कृतोमया।
इह विप्रस्यभवने वय पुत्र सुखोषिता,
अज्ञाता धार्त्तराष्ट्राणां सत्कृता वीतमन्यवः॥
तस्य प्रतिक्रिया पार्थ मयेयं प्रसमीक्षिता,
एतावानेव पुरुषः कृत यस्मिन्न नश्यति।
यावच्च कुर्य्यादन्योऽस्य कुर्य्याद् बहुगुणं तत.
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्त तदाजतुगृहेमहत्॥
हिडिम्बस्य बधाच्चैव विश्वासो मे वृकोदरे,
बाह्वोर्बलहि भीमस्य, नागायुतसमंमहत्।

येनयूयं गजप्रख्या निर्व्यूढावारणावतात्
वृकोदरेन सदृशो बले नान्यो न विद्यते
योव्यतीयात् युधिश्रेष्ठ मपिचक्रधर स्वयम्
जातमात्रः पुराचैव ममांकात् पतितोगिरौ
शरीरगौरवादस्य शिलागात्रै विचूर्णिता ॥
तदहं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पाण्डव ।
प्रतिकार्यं च विप्रस्य तत कृतवतीमतिम्
नेदं लोभान्नचाज्ञानान्न च मोहाद्विनिश्चितम्
बुद्धि पूर्व्वन्तु धर्म्मस्य व्यवसाय. कृतोमया
अर्थौद्वावपिनिष्पन्नौ युधिष्ठिर ! भविष्यत
प्रतीकारश्चवासस्य धर्म्मश्च चरितो महान्
यो ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्य्यादर्थेषु कर्हिचित्
क्षत्रिय सशुभांल्लोकान्नाप्नुयादितिमेपति
क्षत्रिय स्यैव कुर्वाणः क्षत्रियोवध मोक्षणम्
विपुलां कीर्त्तिमाप्नोति लोकेऽस्मिंश्चपरत्र च
वैश्यस्यार्थे च साहाय्यं कुर्वाण क्षत्रियो भुवि
स सर्व्वेष्वपि लोकेषु प्रजा रञ्जयते ध्रुवम्
शूद्रन्तु मोचयेद्राजा शरणार्थिनमागतम्
प्राप्नोहतीकुले जन्म सद्द्रव्ये राजपूजिते
एवं मां भगवान् व्यासः पुरा पौरवनन्दन
प्रोवाच दुकरप्रज्ञ स्तस्मादेवं चिकीर्षितम् ॥

भावार्थ—हे युधिष्ठिर, तुम वृकोदरके लिये सन्ताप मत

करो। मैं कुछ अपनी मूर्खतासे इस काममें नहीं पड़ती हूं। वत्स, हम लोग धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे छिपकर इस ब्राह्मणके घरमें जिस प्रकार समादृत होकर सुखके साथ रहते हैं, उसका प्रत्युपकार देनेके लिये मैंने ऐसा करनेका विचार स्थिर किया है। जो उपकार करने वालेका प्रत्युपकार करता है, वही यथार्थमें मनुष्य है। जितना उपकार किया जाय, उससे कहीं ज्यादा प्रत्युपकार करना उचित है। लाक्षागृहमें भीमका जैसा पराक्रम मैंने देखा है, उसने हिडम्बकके वध करनेमें जैसी वीरता दिखाई है, इससे मैं इस निश्चयपर पहुंची हूं, कि भीमकी दोनों भुजाओंमें दस हजार हाथिओंका बल है। जो हाथीके समान वृकोदर, तुम लोगोंको वारणावतसे अपने कंधेपर चढ़ाकर बाहर ले आया, उस भीमके समान बलवान पृथ्वी-मण्डलमें कोई नहीं दिखाई देता। मुझे मालूम होता है, कि मेरा भीम, योद्धाओंमें श्रेष्ठ, वज्रधारी पुरन्दरको भी युद्धमें पराजित कर सकता है। हे पाण्डव श्रेष्ठ, जब भीमसेन इस धराधामपर अवतीर्ण हुआ था तब एक बार मेरी गोदसे वह पहाड़ पर गिर पड़ा था! उस समय उसके शरीरके संघर्षसे पत्थर टूट गया था। इस कारण मैं स्वयम् भी भीमके बलका अनुभव रखती हूं। यही कारण है, कि अपने आश्रयदाता ब्राह्मणके शत्रुका नाश भीमके द्वारा करानेका मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है। मैं लोभ अथवा

कामवश इस काममें प्रवृत्त नहीं हुई हूं। किन्तु अपनी बुद्धिकी प्रेरणासे इस धर्म्मकार्य्यमें प्रवृत्त हुई हूं। हे युधिष्ठिर, इस कार्य्यसे दो काम होंगे। प्रथम तो अपने आश्रयदाता ब्राह्मण-के उपकारका प्रत्युपकार होगा और दूसरे एक बड़े भारी धर्म्मकार्य्यका सम्पादन होगा। मेरा मत निश्चय है, कि जो क्षत्रिय होकर ब्राह्मणोंका हित साधन करते हैं, वे स्वर्गधामको जाते हैं। जो क्षत्रिय हो कर क्षत्रियके प्राणकी रक्षा करते हैं, वे इहलोक और परलोक—उभयलोकमें विपुल यश पाते हैं! क्षत्रिय होकर वैश्योंकी सहायता करनेसे पृथ्वीमें सर्व्वत्र प्रजारञ्जक होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। क्षत्रिय हो कर शूद्र अथवा शरणागतका विपद्से त्राण करे, तो ऐश्वर्य्य-सम्पन्न राज-पूज्य वंशमें उनका जन्म होता है। हे कौरव-नन्दन, भगवान् व्यासदेवसे मुझे यह उपदेश मिला है और इसी लिये मैंने इस धर्म्मकार्य्यको करनेका दृढ़ निश्चय किया है।

माताकी यह युक्तियुक्त बात सुनकर युधिष्ठिर बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ आश्रयदाता ब्राह्मण और उन गांवालोंकी भलाईके लिये राक्षसका-वध करनेके निमित्त भीमको भेज दिया। भीमका बाहुबल पाण्डवोंका आशाधार और उनके विपद्-समुद्रसे उद्धार पानेके लिये एकमात्र नौका-स्वरूप था। विपद्के समय मनुष्योंमें मानसिक दुर्बलताएं

आजाती हैं। युधिष्ठिरके मनमें थोड़ी बहुत दुर्बलताके आजानेपर भी कुन्तीकी शक्ति अक्षुण्ण थी! विपन्नकी कातरता देखकर भगवती कुन्तीदेवी, अपने अपार दुःखकी बात भूल गयी! जिसने माता कुन्तीका उपकार किया था, उस ब्राह्मण देवताकी सहायताके लिये, और जिस देशमें वह रहती हैं उस देशकी विपद्को दूर करनेके लिये अपने पुत्रको बलिदान चढ़ानेमे वह कुछ भी कुण्ठित नहीं हुई! देवी कुन्तीका युद्धके लिये अपने पुत्रोंको उत्तेजित करना अपनी पैतृक सम्पत्तिका उद्धार करनेके विचारसे, स्वार्थसे सम्बन्ध रखता है। परन्तु यहां देशके कल्याण, दुष्टके दमन और दुःखीके दुःखको दूर करनेके लिये आपने अपने नयनोंके ध्रुवताराको उत्सर्ग कर दिया था। हमारे देशकी आधुनिक माताएं, इस अपूर्व त्यागकी आलोचना करें—यह प्राणप्रद उदाहरण उनके कर्त्तव्य-पथके अन्धकारको दूर करेगा।

वनवास और अज्ञातवासके बाद, भगवान् कृष्ण, युधिष्ठिरके दूत बनकर कौरवोंकी सभामें गये थे। लौटते समय कुन्ती देवीने जो उनके द्वारा पाण्डवोंको सञ्जीवनी-शिक्षाका सन्देशा कहला भेजा था, उससे उनकी हृदय-वत्ताका विलक्षण पता मिलता है। वह उपदेश इस प्रकार है :—

ब्रूया केशव राजान धर्मात्मान युधिष्ठिरम्।
भूयांस्ते हीयते धर्म्मो मा पुत्रक वृथा कृथा।

श्रोत्रियस्येवते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः
अनुवाक हता बुद्धिः धर्ममेवैकमीक्षते।

अङ्गावेक्षस्व धर्म्मत्व यथासृष्टःस्वय' भुवा
बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टाः बाहुवीर्य्योपजीविनः।

क्रूराय कर्म्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने,
शृणु चात्रोपमामेकां या वृद्धेभ्य श्रुता मया।

भावार्थः—कुन्तीने कहा—"हे केशव, तुम तो मेरे कथनानुसार मेरी ओरसे धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे कहना, कि—"हे पुत्रक, तुम्हारे धर्म्म की बहुत हानि हो रही है, वेद जाननेवाले श्रोत्रियोंके समान, वेदाध्ययनके कारण तुम्हारी जो मन्द बुद्धि हो गयी है, वह धर्म्मकी ओर जा रही है. इसलिये अब भी तुम सावधान हो। अपने धर्म्मको व्यर्थमें नष्ट न करो। प्रजापति स्वयम्भूने जिस भावसे धर्म्मको बनाया है, तुम उसी भावसे धर्म्मको देखो। उनको भुजासे बाहु-वीर्य्योपजीवी क्षत्रियोंका जन्म हुआ है—क्रूर कर्म्म अर्थात् युद्धादि द्वारा प्रजापालनमें नित्य तत्पर रहना, यही क्षत्रियोंका धर्म्म है। मैंने वृद्धोंके मुंहसे जैसा सुना है, उसीके अनुसार इस विषयमें मैं एक दृष्टान्त देती हूं सुनोः—

मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददत् पृथिवीमिमाम्।
पुरा वैश्रवणः प्रीतो न चासौ तद् गृहीतवान्॥
बाहुवीर्य्यार्जित राज्यमश्नीयामिति कामये।
ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत॥
मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद् वसुन्धराम्।
बाहुवीर्य्यार्जितां सम्यक्, क्षात्रधर्म्ममनुष्ठितः॥
य हि धर्म्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः।
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा भारत विन्दति॥

भावार्थः—प्राचीन कालमें धनपति वैश्रवण, राजर्षि मुचुकुन्द-के ऊपर प्रसन्न होकर सम्पूर्ण पृथ्वी उन्हें दान देनेके लिये तय्यार हुए थे, किन्तु उस वीर्य्यशाली भूपतिने कहा—मैं अपने बाहुबलसे उपार्जित राज्यका ही भोग करूं, यही मेरी कामना है। यह बात सुनकर वैश्रवण बड़े विस्मित और प्रसन्न हुए। क्षात्र-धर्म्म निष्ठ राजा मुचुकुन्दने अपने प्रतिज्ञानुसार, अपनी भुजाके बलसे पृथ्वीको जीत कर उसका शासन किया था। हे तात! सुरक्षित प्रजा जिस धर्म्मका अनुष्ठान करती है, उस अनुष्ठित धर्म्मके फलका चतुर्थांश राजाको मिलता है।

राजाचरति चेद्धर्म्मं देवत्वायैव कल्पते,
स चेद्धर्म्मं चरति, नरकायैव गच्छति।
दण्डनीतिश्च धर्मेभ्य चातुर्वर्ण्यं नियच्छति,
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यक् धर्मेभ्यश्च गच्छति।

दण्डनीत्या यदा राजा सम्यक् कात्स्न्येंन वर्त्तते,
तदा कृतयुग नाम कालः श्रेष्ठ प्रवर्त्तते॥
कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्
इति ते संशयो माभूद् राजा कालस्य कारणम्।
राजा कृत युगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्॥

भावार्थः—राजा यदि स्वयं धर्माचरण करे तो उससे उसे देवत्व प्राप्त होता है और यदि अधर्म्माचरण करे, तो वह राजा नरकमें जाता है। स्वामी, यदि भलीभांति सोच विचार-कर दण्डनीतिसे काम ले, तो ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्म पथपर रखकर धर्म्म संचयका कारण स्वरूप होता है! राजा दण्डनीतिके अनुसार जब सम्यक् प्रकारसे कार्य्य करते हैं, तो सभी युगोंमें श्रेष्ठ सत्ययुगका प्रादुर्भाव होता है। "काल राजाका कारण है या राजा कालका कारण है," इस प्रकारका संशय अपने मनमें नहीं रखना! तुम निश्चय समझ रखो, कि राजा ही कालका कारण है—राजा ही, सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंका कारण होता है।

कृतस्य करणाद्राजा, स्वर्गमत्यन्त मश्नुते,
त्रेतायाः करणाद्राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते॥
प्रवर्त्तनाद्द्वापरस्य, यथाभागमुपाश्नुते,
कलेः प्रवर्त्तनाद्राजा पापमत्यन्त मश्नुते॥

ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समा ।
राजदोषेण हि जगत्, स्पृश्यते जगत स च ॥
राजधर्मांश्च वेक्षस्व, पितृपैतामहोचितान् ।
नैतद् राजर्षि वृत्तं हि, यत्त्वं स्थातुमिच्छसि ॥
नहि वैक्लव्य संसृष्ट आनृशंस्य व्यवस्थित ।
प्रजापालन सम्भूतं, फल किञ्चिन्न लब्धवान् ॥

भावार्थ :—सत्ययुगका प्रवर्त्तक राजा अत्यन्त स्वर्गका भोग किया करता हैं । त्रेतायुगका प्रवर्त्तक राजा, उतना अधिक स्वर्ग-भोग नहीं करता । द्वापरका प्रवर्त्तनकारी राजा, यथासम्भव पुण्यफल पाता हैं । कलियुगका प्रवर्त्तक राजा अत्यन्त पापभोग और अनन्तकाल तक नरकमे वास करता है । राजाका दोष संसारको और संसारका दोष राजाको स्पर्श करता हैं । हे पुत्र, पितृ-पितामहोंके अनुष्ठित राजधर्मको पर्यालोचना करो—उस पर ध्यान दो । तुम जिस धर्ममें रहना चाहते हो, वह राजर्षियोंका धर्म नहीं है । वैक्लव्य प्रयुक्त अक्रूरता मे व्यवस्थित रहनेसे प्रजापालनरूप फललाभकी सम्भावना नहीं रहती ।

नह्येतामाशिषं पाण्डुर्नचाह न पितामह.,
प्रयुक्तवन्त पूर्व्वन्ते यया चरसि मेधया ।
यज्ञो दान तपः शौर्य्य प्रज्ञा सन्तानमेवच,
माहात्म्य बलमायुश्च नित्यमाशसित मया ॥

नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं, ददुर्म्मानुष देवता,
दीर्घमायुर्धन पुत्रान् सम्यगाराधिताः शुभा ।
पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च
दानमध्ययनं यज्ञ प्रजानां परिपालनम् ॥
एतद्धर्म्ममद्धर्म्मं वा जन्मनैवाभ्यजा यथाः ।
ते तु वेद्या कुले जाता अवृत्त्या तातपीड़िता. ॥

भावार्थ :—तुम अपनी बुद्धिसे जिस प्रकार काम कर रहे हो, उस प्रकार काम करनेके लिये मैंने और पिताने—हम किसीने आशीर्वाद नहीं दिया है। मैं नित्य ही ईश्वरसे तुम्हारे यज्ञ, दान, तपस्या शौर्य्य, प्रज्ञा. सन्तान, माहात्म्य, वल और परमायुकी प्रार्थना किया करती थी। कल्याणप्रद ब्राह्मण भी सम्यक् प्रकारसे आराधित होकर तुम्हारी दीर्घायु धन और पुत्रादिके लिये प्रार्थना करते हुए देवताओंको प्रतिदिन स्वाहा स्वधा दिया करते थे। पितृगण और देवता भी नित्यदान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजा-पालनकी कामना किया करते है। हे पुत्र ये दानादि धर्म हो या अधर्म हो, जातिधर्मके अनुसार, तुमने इन सवका पालन करनेके लिये जन्म लिया है। तुम लोग, अच्छे कुलमें जन्म लेकर और विद्यावान होकर भी. इस समय जीविका विहीन होकर कष्ट भोग रहे हो।

यत्र दानपति शूर क्षुधिता पृथिवी चरा
प्राप्य तुष्टा प्रतिष्ठन्ति, धर्म कोऽभ्यधिकस्ततः।

दाने नान्य बले नान्य तथा सुनृतयापरम्
सर्वत प्रतिगृह्णीयात् राज्य प्राप्येह धार्मिक ।
ब्राह्मणः प्रचरेद् भैक्ष्यं क्षत्रियः परिपालयेत्
वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छुद्र परिचरेच्चतान् ।
भैक्ष्य विप्रतिषिद्धन्ते कृषिर्नैवोपपद्यते
क्षत्रियोऽसि क्षतात्राता बाहुवीर्योपजीविता ।
मित्रमथ महावाहो, निमग्न पुनरुद्धर
साम्ना भेदेन दानेन, दण्डेनाथ नयेन च ।
इतो दुःखतर किंनु यदह दीनवान्धवा
परपिण्ड मुदीक्षे तत्वां सूत्वा मित्रनन्दनम् ।
युध्यस्व राजधर्मेण मा मज्जय पितामहान्
मागम क्षीणपुण्यस्त्व सानुजः पापिकां गतिम् ।

भावार्थ :—शौर्य्यशाली दानवीर नरपतिके आश्रयमें क्षुधार्त मनुष्य सन्तुष्ट होकर अवस्थान करें तो उस नरपतिके लिये इससे अधिक और धर्म क्या हो सकता है ? धार्मिक पुरुष राज्य प्राप्त करके किसीको दानसे, किसीको बलसे और किसीको मिठी बातोसे वशीभूत करें ! ब्राह्मण भिक्षावृत्ति, क्षत्रिय प्रजा पालन, वैश्य धनोपार्जन, और शूद्र तीनो वर्णोंकी सेवा करें । तुम्हारे लिये भिक्षा निषिद्ध है, कृषि भी अनुपयुक्त है। तुम क्षत्रिय हो, विपन्नोंके त्राण करनेवाले हो । एकमात्र बाहुवीर्य्य ही तुम्हारी जीविकाका उपाय है । हे महावाहो ! दाम, दण्ड, भेद, अथवा जिस किसी उपायसे हो, शत्रुके हाथमे जो तुम्हारी

पैतृक-सम्पत्ति चली गयी है, उसका पुनरुद्धार करो। मित्रोंमें आनन्द बढ़ानेवाले तुम्हारे जैसे पुत्र उत्पन्नकरके भी मैं वान्धव-हीन हो, पराये पिण्डसे जीवन व्यतीतकर रही हूं। मेरे लिये इससे बढ़कर और अधिक दुःखकी बात क्या हो सकती है? हे पुत्र, इसलिये राजधर्म्म पालन करते हुए युद्ध करो, कापुरुषता दिखा कर अपने पिता-पितामहके नामको मत डूबाओ, उनके पवित्र यश-पट्टमें धब्बा मत लगाओ। अपने भाइयोंके साथ, तुम क्षीण पुण्य होकर पापमयी गतिके अधिकारी मत बनो।

> अर्जुन केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके।
> उपोपविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता॥
> अथान्तरीक्षे वागासीद्दिव्यरूपा मनोरमा।
> सहस्राक्ष सम कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः॥
> एष जेष्यति सग्रामे कुरून् सर्वान् समागतान्।

भावार्थ :—हे केशव, तुम अर्जुनसे कहना, कि जिस समय मैंने तुमको उत्पन्न किया और चारों ओरसे स्त्रियोंने मुझे घेर रखा था, उस समय निम्नलिखित मनोहारिणी दैववाणी हुई थी :—"हे कुन्ती, तेरा यह पुत्र इन्द्रके समान होगा और युद्धमें कौरवोंको पराजित करेगा।"

> भीमसेन द्वितीयश्च लोकमुद्वर्त्तयिष्यति
> पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्यदिव स्पृशेत्।

हत्वा कुरूंश्च संग्रामे, वासुदेव सहायवान्
पितृयमश प्रनष्टञ्च पुनरप्युद्धरिष्यति ॥
भ्रातृभि सहित श्रीमान् स्त्रोनूमेधानाहरिष्यति ॥
स सत्यसन्धो वीभत्सु सव्यसाची यथाच्युत
तथा त्वमेव जानासि बलवन्तं दुरासदम्।
तथा तदस्तु दाशार्ह यथा वागभ्यभाषत ॥
धर्म्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय, तथा सत्य भविष्यति ॥

भीमसेनके साथ पृथ्वीको जीतकर उसको मथ डालेगा। इसका यश स्वर्गलोक तक पहुंच जायगा। वासुदेवकी सहायतासे कौरवोंको पराजितकर अपने नष्ट पैतृकराज्यका उद्धार करेगा। अपने भाइयोंके साथ मिलकर तीन महायज्ञोंका अनुष्ठान करेगा। हे अच्युत, वह सव्यसाची, वीभत्सु जैसा सत्यसन्ध और अक्षय सत्यसम्पन्न है, वैसा ही उसे दुरासद और बलवान जानना। हे वार्ष्णेय, जिसमें दैववाणी सत्य हो, वह उपाय करना। यदि धर्म सच्चा है, तो अवश्य वह आकाशवाणी सत्य होगी।

त्वञ्चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि,
नाह तदभ्यसूयामि यथावागभ्यभाषत,
नमो धर्माय महते धर्मो धारयते प्रजा।
एतद्धनजयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः
यदर्थं क्षत्रियाः सूते तस्यकालोऽयमागतः

नहिं वैर समामाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभा
विदिताते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति
यावदन्तं न कुरुते शत्रुणां शत्रुकर्षण,
सर्व्वधर्म्म विशेषज्ञान् स्नुषां पाण्डुर्महात्मन
ब्रूया माधव कल्याणीं, कृष्णां कृष्णायशस्विनीम् ॥

भावार्थः—हे वृषभ, तुम भी सब प्रकारसे ऐसा ही यत्न करो, जिससे आकाश-वाणी सच्ची होकर मेरा मनोरथ पूरा हो। आकाश-वाणीने जिस बातको व्यक्त किया है, उसपर मैं किसी प्रकारका दोषारोपण नहीं कर सकती हूं। महान् धर्म्मको मैं नमस्कार करती हूं। धर्म्म ही अखिल प्रजापुञ्जको धारण करने वाला है। हे वृषभ, धनंजयको इस प्रकार कहकर नित्यके उद्योगी वृकोदरसे कहना कि क्षत्रियोंकी रमणियां, जिस समयके लिये पुत्रको उत्पन्न करती हैं, वह समय अब आगया है और यही वह समय है। अच्छे पुरुष, वैरीको पा कर कभी आलस्यग्रस्त नहीं हो बैठते। हे यादव, शत्रु संहारी भीमकी बुद्धिको तुम भलीभांति जानते हो। जब तक वह शत्रुओंका संहार नहीं करता तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती! हे कृष्ण, महात्मा पाण्डुकी पतोहू, सभी धर्मोंको भली भांति जानने वाली, यशस्विनी कल्याणी कृष्णासे कह देना—"हे सत्कुल सम्भूते, हे महाभागे, हे यशस्विनी, तुमने हमारे सभी पुत्रोंके साथ जो यथायोग्य आचरण किया है वह तुम्हींसे हो सकता है। हे पुरुषोत्तम,

क्षात्रधर्म-निरत पाण्डुकेदोनो पुत्रोको कहना, कि "हे वत्स तुम प्राण पणसे, अपने विक्रमसे अर्जित सुखका सम्भोग करनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करो। विक्रम द्वारा लब्ध अर्थ ही, क्षात्रधर्म्म द्वारा जीवन यापन करनेवाले मनुष्योंके मनको सदा प्रसन्न रखता है। तुम लोगोंके सभी प्रकारके धर्म संचय करनेपर भी, तुम लोगोंके सामने पाञ्चालीको जो कठोर वाक्य कहे गये थे, उनको कौन सह्य कर सकता है ?

यत्तुसा वृहतीश्यामा सभायां रुदती तदा
अश्रौषीत् परुषा वाच स्तन्मे दुःखतर महत् ।
स्रीधर्म्मिणी वरारोहा क्षात्रधर्म्मरता सदा
नाध्यगच्छत् तदा नाथ कृष्णा नाथवती सती
त वै ब्रूहि महाबाहो सर्व्वशस्त्र भृतांवरम्
अर्जुन पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीञ्चर ।
विदितौ हि तवात्यर्थं क्रुद्धाविवयमान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपिपरां गतिम्
तयोश्चैतदवज्ञानम् यत् सा कृष्णा सभां गता
दुःशासनश्चयद् भीम कटुकान्यभ्यभाषत ।
पश्यतां कुरुवीराणां तच्चसस्मारये पुनः
पाण्डवान् कुशल पृच्छेः सपुत्रान् कृष्णयासह
माञ्च कुशलिनी ब्रूयाः तेषु भूयोजनार्दन

भावार्थ :—तुम्हारे धनापहरण, द्यूतमें पराजय होने तथा

वन जानेसे भी मुझे उतना कष्ट नहीं हुआ था, जितना पति-प्राणा सर्वाङ्ग सुन्दरी रोती हुई द्रौपदीको सभाके बीचमें कहे हुए दुरात्माओंके कटुवाक्योंको सुननेसे हुआ था। वह दुःख मेरा मर्म विदारक घोरतर दुःख है, कोई साधारण नहीं। उस समय क्षात्रधर्म निरता, स्त्रीधर्म युक्ता, वरासहा पांचाली, सनाथा हो कर भी अनाथाके समान हो गयी थी। हे महा-वाहो, तुम सर्व्व श्रेष्ठ, पुरुषसिंह, अर्ज्जुनसे वहुत जोर देकर कहना, जिससे वह द्रौपदीके दिखाये हुए मार्गपर चले। भीम और अर्जुन क्रोधित होने पर यम-युगलके रूपको धारण कर अमरोंको भी मृत्यु-मार्गपर धर घसीटते हैं, यह वात तुम भलीं भांति जानते हो। उनके इस प्रकार वीर्य्य सम्पन्न होने पर भी, उनकी महिषी राज सभामें अपमान पूर्व्वक लायी गयी, इससे वढ़ कर उनके लिये अपमानकी वात और क्या हो सकती है? कौरवोंके सामने, दुःशासनने भीमको जो गालियां दीं थीं, उनका तुम स्मरण करा देना! मेरी ओरसे सपुत्र कलत्र पाण्डवोंका कुशल-प्रश्न पूछना और मेरा भी कुशल समाचार कह देना।

कुन्तीने जिस वलशाली सजीव भाषामें उपदेश दिया था, उससे मृतप्राय व्यक्तियोंके हृदयमें भी वलका संचार हो आता है! उनका अपूर्व्व उपदेश, डरपोकोंके हृदयसे भयको दूर कर

देता हैं। वागविदाम्वरा कुन्ती देवीने, पुत्रोंके अतीत जीवनकी घटनाओंको, उनके अपूर्व बल-विक्रमको स्मरणकराकर उन्हें युद्धके लिये प्रस्तुत किया! अन्तमें द्रौपदीके अपमान, तथा कटुवाक्यका उल्लेख कर पुत्रोंको युद्धके लिये वद्ध परिकर होनेके निमित्त उपदेश दिया! दुःख, दैन्य, दुर्वलता और आलस्यको दूर कर, उसकी जगहपर उत्साह, तेजस्विता, निर्भीकता प्रभृति लानेके लिये इस उपदेशामृतसे वढ़ कर दूसरी कोई दवा नहीं। वर्त्तमान कालकी माताएं प्राचीन कालकी माताओंके पीयूषवर्षी उपदेशको ग्रहणकर अपनेको पवित्र वनावें।



विदुला ।



हुत पुराने समयकी वात है कि हमारे इस भारतवर्षमें सत्कुलसम्भूता विदुला नामकी एक यशस्विनी राजकन्या थी। कई सभा-समितियोंके साथ उनका सम्बन्ध था! बहुतोंकी बहुतसी वातें सुनकर वह बहुश्रुता हो गयी थीं। बहुतसे शास्त्रोंका अध्ययन कर वह दीर्घदर्शिनी भी हुई थीं। वह क्षात्रधर्म पर श्रद्धा रखनेवाली, उदार, कुछ क्रोधी और कुछ कुटिल स्वभावकी थीं। वह सिन्धुदेशके समीपवर्त्ती सौवीर राजाकी महिषी थीं! एक समय उनके पुत्र संजय, सिन्धुराजसे पराजित होकर निरुद्यमी हो मनको मारे सोये पड़े थे, उस समय राजमाता विदुलाने जिन उत्साहपूर्ण वाक्योंसे पुत्रको उत्तेजित किया था, वे उत्साह पूर्ण वाक्य वीरताद्योतक वातोंके इतिहासमें अपूर्व हैं। कुन्तीदेवी जब अपने पुत्रोंको सन्तोषप्रद उत्तेजक सन्देशा नहीं भेज सकी, तब उन्होंने विदुलाकी ही ज्वालामयी वक्तृताका सारांश लेकर अपने पुत्रोंको उत्तेजनापूर्ण सन्देशा कह लाया था। इन अद्भुत उपदेशोंसे वर्त्तमान भारतकी देवियां परिचित होकर भारतको पुनः उसके पूर्व स्थानपर स्थापित करें। यह उपदेश परधरा

पुस्तक ही तक आवद्ध न रह कर, भारतीय नरनारियोंके कण्ठस्थ हो—इसीका वे जप करें—ध्यान धारणाके लिये भी इससे और कोई उत्कृष्ट वस्तु न समझें। अगर पारायण करना हो, तो इसीका परायण, भारतीय स्त्रियां किया करें।

विदुलाके उपदेशः—

अनन्दन मयाजात द्विपतां हर्षवर्द्धन
न मया त्व न पिता च जातः क्काभ्यागतोह्यसि
निर्मन्युश्चाप्य सख्येय पुरुषः क्लीवसाधन
यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरवह
मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन वोभर
मन कृत्वा सुकल्याणा मा भैस्त्व प्रति सहर
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैव पराजितः
अमित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो वन्धुशोकद
सुपूरावै कुनदिका सुपूरो मुषिकाञ्जलिः
सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति।

भावार्थः—रे शत्रु नन्दन तू मेरा नन्दन नहीं है! मेरे गर्भसे भी तेरा जन्म नहीं है, तेरे पिताने भी तुझे उत्पन्न नहीं किया है। तू कुल कलङ्क स्वरूप है। कहांसे तू ऐसा कुलकलङ्की आया? तुझमें न तो उद्योग है और न पुरुषकार है। तेरी बुद्धि, तेरा आकार, तेरी प्रवृत्ति सब क्लीवोंके समान है। तुझे पुरुष समझना अज्ञानियोका काम है। तू सदाके लिये निराश

हो बैठा है! रे दुर्बुद्धे, यदि तू कल्याण चाहता है, तो पुरुषं चित चिन्तासे चिन्तित बन। थोड़ेसे तृप्त हो कर अपरिमे आत्माको अपमानित मत कर। निर्भीक बन, शंका रहित हो कर उत्साह तथा अध्यवसायसे चित्तको स्थिर कर। रे कापुरुष पराजित, मानशून्य और बन्धुवर्गके लिये दुखदायी बनक शत्रुओंका आनन्द बढ़ाते हुए इस प्रकार सोये मत रह। शीः उठ, छोटी छोटी नदियां, जैसे थोड़े ही जलसे भर जाती हैं मूषिककी अञ्जलि जैसे थोड़े द्रव्यमें भर जाती है, उसी प्रकार कापुरुष थोड़ेमें परितृप्त हो कर सहज ही में सन्तुष्ट हो जाता है।

अप्यहेरारुज' दंष्ट्रा माश्वेव निधनं व्रज,
अपि वा सशय प्राप्य, जीवितेऽपि पराक्रमे।
अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं, पश्येस्त्व विपरिक्रमन्
विनदन् वाथ वा तुष्णीं, व्योम्नि वाप विशङ्कितः
त्वमेव प्रेतवच्छेषे, कस्माद्वज्रहतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वाप्सी शत्रु निर्जित
मास्त गमस्त्व कृपणो, विश्रूयस्व स्वकर्मणा
मा मध्ये मा जघन्येतृत्व. माधोभूस्तिष्ठगर्जित
अलातं तिन्दुकस्येव, मुहूर्त्तमपिहिज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिं, धूमायस्वजिजीविषु

भवार्थः—रे कुलाङ्गार, कुपित विषधरके दन्त उखाड़नेका प्रयत्नकर मर जाना अच्छा; पर कुत्तेके समान घृणित भावसे

मरना अच्छा नहीं है। जीवनमें संशयापन्न होकर अपना पौरुष दिखला। आकाशमें विहार करनेवाला श्येन पक्षी, जिस प्रकार निःशङ्कचित्त होकर अपने विपक्षों पर लक्ष्य रखता है, तू भी उसी प्रकार भयविहीन होकर परिभ्रमण और आक्रोश प्रकाश अथवा मौनावलम्बन करते हुए शत्रुओंका छिद्रान्वेषण कर! रे क्लीव, तू वज्राहत मृतकके समान जड़ होकर इस प्रकार क्यों सोया पड़ा है? शीघ्र उठ, शत्रुओंसे पराजित होकर यह समय सोनेका नहीं है। दैन्यका अवलम्बन करके मनुष्योंके स्मृति-पथसे दूर मत हो। अपने पौरुषके द्वारा सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त कर! लोगोंने जिस उत्तम मध्यम और जघन्य अवस्थाकी व्यवस्थाकी है, सो तुम उसमेंसे मध्यम और जघन्य अवस्थाको मत लो। तुम तेजस्वी-जनोचित दण्डरूप उत्कृष्ट उपायका अवलम्बन कर उत्तम श्रेणीमे परिगणित हो। रे भीरु, अनल संलग्न तेन्दुक काष्ठके समान प्रज्वलित हो उठ। वृथा जीवन धारणकर, ज्वाला-शून्यभूसीकी आगके समान आलस्य रूप धूमसे आच्छन्न मत हो!

मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरं
मा ह स्म कस्यचिद्गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः
कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाजिं यावदुत्तमम्
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते।

अलब्धा यदि वा लब्धा नानुशोचति पण्डितः
आनन्तर्य्यं चारभते न प्राणानां धनायते।
उद्भावयस्व वीर्य्यं वा, तां वा गच्छध्रुवांगतिम्
धर्मं पुत्राग्रत कृत्वा किं निमित्तं हि जीवसि
इष्टापूर्त्तं हि ते क्लीव, कीर्त्तिश्च सकला हता,
विच्छिन्न भोगमूलं ते किं निमित्रं हि जीवसि।

भावार्थः—चिरकाल धूमायित होकर रहनेकी अपेक्षा, मुहूर्त्तकाल ज्वलित होना हजार गुना श्रेष्ठ है। मेरा यह मत है, कि किसी राजाके घरमें अत्यन्त तीक्ष्ण, या अत्यन्त मृदुस्वभावका पुत्र, जन्म न ले। रणकोविद, वीरपुरुष, संग्राममें जाकर और वीरोचित उत्तम कार्य्य सम्पन्नकर धर्म्मके प्रति उऋण होते हैं। वह किसी प्रकार भी अपनेको निन्दनीय नहीं बनाते हैं, उनकी अभीष्टसिद्धि हो या न हो, पर उसके लिये वह दुःखी नहीं होते! प्राणके प्रति ममता-शून्य होकर आगे जो कर्त्तव्य है, उसीका वह आरम्भ करते हैं। अतएव हे पुत्र, तू अपने बाहु वीर्य्यको दिखला। नहीं तो मृत्युका कलेवा बनजा। धर्म्मको त्यागकर जीवित रहनेकी क्या आवश्यकता? रे क्लीव तेरा इष्टापूर्त्त (अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य, वेदानुशीलन आतिथ्य, बलि-वैश्वदेवादि क्रिया और वापी कूप तडागादि, खनन, देवमन्दिरादिकी प्रतिष्ठा, अन्नदान, उद्यानादिका निर्माण) और यावतीय कीर्त्ति कलाएं विलुप्त हो जायंगी और भोग सुखकी जड़ भी

छिन्न हो जायगी, इस प्रकार निस्सार जीवन धारण करनेका क्या फल ?

शत्रु र्निमज्जता ग्राह्यो जघायां प्रपतिष्यता,
विपरिच्छिन्न मूलोऽपि न विषीदेत् कथञ्चन
उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृत स्मरन्
कुरु सत्वञ्च मानञ्च विद्धि पौरुषमात्मनः
उद्भावय कुल मग्न, तत्कृते स्वयमेवहि !
यस्यवृत्तं न जल्पन्ति, मानवा महदद्भुतम्
राशिवर्द्धनमात्र स, नैव स्त्री न पुनः पुमान्
दाने तपसि शौर्य्ये च, यस्य नोच्चारित यशः
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एवस ।

भावार्थः—यदि निमग्न या पतित ही होना हो, तो वीर पुरुषका कर्तव्य यही है, कि शत्रुओंकी जंघा पकड़ उनको साथ ही लेकर गिरे ! जड़ मूलसे उखड़ जाने पर भी विषादयुक्त भग्नोद्यम होना नही चाहिये, अतएव हे अज्ञानी पुत, सत्कुलसम्भूत अच्छे घोड़े जिस प्रकार, उद्यमसे दोनों धुरोंको लेकर दौड़ते हैं, उसी प्रकार उनका दृष्टान्त देखकर तुम भी अपना पराक्रम दिखलाओ ! जिस कामसे अपने पौरुषका प्रकाश हो, उसको पहचानो ! तेरे कारण, जो कुल निमग्नप्राय हो गया है, नीच दशाको प्राप्त हो गया है, तू स्वयं उसके उद्धारके लिये प्रयत्न कर, यह संसार जिसके अद्भुत अनुष्ठित कार्यकी प्रति-

ध्वनि नहीं करता है, वह मनुष्य केवल मनुष्योंकी संख्याको बढ़ाता है, उसको न तो स्त्री ही कहा जा सकता है और न पुरुष ही कहा जा सकता। क्लीवोंमें उसकी गणना होती है। दान, तपस्या, शूरता, सत्य, विद्या और आर्थोपार्जनमें जिसका नाम नहीं गिना जाता है, वह माताकी विष्ठामात्र है। वह कदापि पुत्र नहीं कहा जा सकता !

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा !
जनान् योऽभिभवत्यन्यान् कर्म्मणा हि सवेपुमान्, ।
न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि,
नृशस्याम यशस्यांञ्च दुःखां कापुरुषोचिताम् ।
यं एनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम्
लोकस्य समवज्ञात निहीनाशनवाससम् ॥
अहो लाभकरं हीन मल्पजीवनमल्पकम्
नेदृशं वन्धुमासाद्य वान्धव सुखमेधते ।
अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वय राष्ट्रात् प्रवासिता
सर्व्व कामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टारकिञ्चना
अवल्गुकारिणं सत्सु, कुलवंशस्य नाशनम् ।

भावार्थः—जो मनुष्य शास्त्रज्ञान, तपस्या, धर्म्म, सम्पत्ति, विक्रम और अन्यान्य पुरुषकारोंके द्वारा दूसरोंको अतिक्रम करते हैं, वे ही यथार्थ पुरुष हैं। रे मूर्ख, पापात्माओंके समान कापुरुषोचित घृणित, कलङ्कित दुःखप्रद भिक्षावृत्तिका अन्वेषण

मत कर। लोगोंके अवज्ञा भाजन, शत्रु ओके आनन्दको बढ़ानेवाले हीन हीन अल्पप्राण क्षुद्र स्वभाव स्वल्पसन्तुष्ट बन्धुको प्राप्त-कर उसके मित्र भी कभी सुखी नहीं हो सकते। हाय! अब स्थान-भ्रष्ट, राष्ट्र निर्वासित, सब प्रकारसे भोग-सुख-विवर्जित नितान्त निःसम्बल होकर हम लोगोंको प्राण छोड़ना पड़ेगा। हे सञ्जय! साधुसमाजमें अनुचित व्यवहार करनेवाले, वंशध्वंसकारी कुल पांशुल तुमको उत्पन्न कर मैं पुत्र रूप कलिकी साक्षात् जननी हुई हूं।

कलिं पुत्र प्रवादेन सञ्जय! त्वामजीजनम्
निरमर्षं, निरुत्साह निर्वीर्य्यमरिनन्दनम्॥
मा स्म सीमन्तिनी काचित् जनयेत् पुत्रमीदृशम्
मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्
ज्वल मूर्द्धन्यमित्राणां मुहूर्त्तमपि वा क्षणम्
एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी।
क्षमावान् निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्॥
सन्तोषो वै श्रिय हन्ति तथानुक्रोश एव च।
अनुत्थान भये चोभे निरीहो नाश्नुते महत्॥
एभ्यो निकृति पापेभ्य प्रमुञ्चात्मानमात्मना।
आयस हृदय कृत्वा, मृगयस्व पुन स्वकम्॥

भावार्थः—मेरे समान, और कोई रमणी, ऐसे क्रोधहीन, उत्साहहीन, निवीर्य्य, शत्रुओंके आनन्दवर्द्धक, कुत्सित,

कुनन्दनको गर्भमें धारण न करे ! हे हतभाग्य, निरुद्यम -धूमसे आच्छन्न न होकर प्रचण्ड उत्साहानलमें प्रज्वलित हो ! दृढ़तापूर्व्वक शत्रुओ पर आक्रमण कर उनका संहार कर। मूहूर्त्त भरके ही लिये, किन्तु शत्रुओंके शिरपर प्रज्वलित तो हो। अमर्षयुक्त और अक्षमायुक्त होना ही पुरुषका कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति क्षमाशील और अमर्षशून्य—क्रोधशून्य रहते हैं, वे न तो स्त्री ही हैं और न पुरुष ही। सन्तोष, दया अनुद्यम और भय ये लक्ष्मीके विलासके कारण हैं। नीच व्यक्ति, श्रेष्ठ फल पानेमें कभी समर्थ नहीं होते। हे पुत्रक, पराभव-साधन उक्त दोषोसे आत्माको निर्मुक्त करो, हृदयको लोहके समान दृढ़ बनाकर अपनी सम्पत्तिका उद्धार करनेके लिये प्रवृत्त हो !

पर विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते ।
तमाहुर्व्यर्थनामान स्त्रीवद्य इह जीवति ॥
शूरस्योर्ज्जितसत्वस्य सिह विक्रान्तचारिणः ।
दिष्टभाव गतस्यापि विषये मोदते प्रजाः ॥
य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ।
अमात्या ना मथो हर्ष मादधात्यचिरेण सः ॥

भावार्थ :—विचार कर देखो, जो लोग गुरुभार-वहनमें समर्थ होते हैं, इसी लिये वे संसारमें पुरुष कहे जाते है। जो मनुष्य, स्त्रियोंके समान, इस लोकमें जीवित रहते हैं, वे व्यर्थ

पुरुष है। सिंहके समान अथवा प्रबल प्रताप फैलानेवाले, उन्नतचित्त, शूर वीर नरपतिकी मृत्यु होनेसे उनकी अधीनस्थ सुशासित प्रजा, सुख-सम्भोगमें हृष्ट रह सकती है। जो अत्यन्त विचारशील नृपति, अपने प्रिय सुखको छोड़कर राज्यलक्ष्मीके अन्वेषणमे प्रवृत्त होते हैं, वे शीघ्र ही अमात्य और बन्धुबान्धवो-को आनन्दित कर लेते हैं।

पुत्र उवाच—

किन्तु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्व्वथा
किमाभरणं कृत्यन्ते, किम्भोगैर्जीवितेन वा,

मातोवाच—

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयु
ये त्वादृतात्मनां लोका सुहृदस्तान् व्रजन्तु नः
भृत्यैर्विहीयमानानां, परपिण्डोपजीविनाम्
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्त्तिथा
अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा
पर्ज्जन्यमिवभूतानि देवा इव शतक्रतुम्
यमाजीवन्ति पुरुष सर्व्वभूतानि सञ्जय,
पक्वद्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत्।
यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवा सुखम्
त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम्

स्वबाहुबलमाश्रित्य, योऽभ्युज्जीवति मानवः
स लोके लभते कीर्त्तिं परत्र च शुभां गतिम्

भावार्थ :—पुत्रने कहा—"यदि मैं नहीं रहूंगा, मैं तुम्हारी आंखोंकी ओट हो जाऊंगा, तो तुम्हारा यह सारा भूमण्डल, यह अलङ्कार और जीवन—इन सबका क्या प्रयोजन रह जायगा ?

माताने कहा—मैं राज्य या आभारणादिके लिये तुम्हें इस प्रकार उत्तेजन कर रही हूं, सो मत समझ। मेरे कहनेका मतलब यह है, कि अनादृत निकृष्ट मनुष्य जिस लोकको जाता है, उस लोकको, हमारे दुशमन जांय और आदृतात्मा अर्थात् पूजनीय मनुष्य, जिस लोकको जाते हैं, हमारे मित्रोंको वह लोक प्राप्त हो। हे तात, भृत्योंसे रहित, परान्नभोजी, म्लानसत्व, जनहीन कापुरुषोचित जघन्यवृत्तिका ग्रहण मत करो। समस्त प्राणिपुञ्ज जिस प्रकार जलधरका अनुकरण करता है और देवता जिस प्रकार इन्द्रका अनुकरण करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण और सुहृदोंका जीवन, तेरे ऊपर निर्भर रहे। हे सञ्जय, जिस प्रकार सुन्दर पके पके फलोंसे युक्त वृक्षोंपर पक्षी निवास करते हैं, उसी प्रकार संसारके जीवमात्र जिस पुरुषके आश्रयमें अपनी जीविकाका निर्वाह करते हैं, उसी पुरुषका जीवन सार्थक है। इन्द्रके बाहुवीर्य्यसे संवर्द्धित देवताओंके समान, जिस प्रतापशाली पुरुषके दोर्दण्डप्रतापसे

बन्धुवर्गके सुख, ऐश्वर्य्यकी वृद्धि होती है, उसीका जीवन सार्थक है। जो भाग्यवान पुरुष अपने बाहुवलके प्रतापसे उन्नत-जीवन धारण करते हैं, वे इस लोकमें कीर्त्ति और पर-लोकमें कल्याणमयी परमा गतिको पाते हैं।

अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि
निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव।
यो हि तेजो यथाशक्तिः न दर्शयति विक्रमात्
क्षत्रियो जीविताकांक्षी स्तेन इत्येव तं विदु।
अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च
नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम्
सन्तिवं सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा न तथा जना
दौर्वल्यादासते मूढ़ा व्यसनौघ प्रतीक्षिणः।
सहायोपचितं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः
अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम्।
तैः कृत्वा सह सघातं गिरिदुर्गालयं चर
काले व्यसनमाकांक्ष्य नैवायजमरामरः
सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामितत्त्वयि
अन्वर्थनामा भवमे पुत्र माव्यर्थनामकः
सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो वाल त्वां ब्राह्मणऽब्रवीत्
अयंप्राप्य महत्कृच्छ्रं पुनरिद्धिं गमिष्यति
तस्य स्मरन्ति वचनमाशसे विजयं तव
तस्मात्तात! ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनःपुन

यस्यह्यर्थाभिनिवृत्तौ भवन्त्याप्यायित परे
तस्यार्थ सिद्धिर्नियता नयेस्वार्थानुसारिणः

भावार्थः—हे पुत्र, यदि ऐसी दुरवस्थाके समय भी पौरुष त्यागनेकी इच्छा करोगे तो शीघ्र ही नीच मार्गमें तुम्हें विचरण करना पड़ेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। क्षत्रिय-कुलमें जन्मधारण कर, जो मनुष्य निस्सार जीवनकी अभिलाषासे यथाशक्ति बल दिखाकर अपना तेज नहीं दिखलाता है, पण्डितोंने उसे चोर कहा है। मुमूर्षु मनुष्योंके सामने औषधि-के समान यथार्थ स्वार्थसंवलित, युक्तिसम्मत, गुणसंयुक्त सुभाषित सम्भवतः तुम्हारे ऊपर भय दिखानेमें असमर्थ हुआ है। देखो सिन्धुराजके सहायस्वरूप, बहुतसे मनुष्य हैं, किन्तु उनमें बहुतसे मनुष्य, उनसे असन्तुष्ट हैं। प्रजाएं दुर्बलताके कारण विशेषतः कोई उपाय न सूझने से स्वामीके व्यसनको देख रही हैं। इसके सिवाय जो पुरुष खुलकर उनके साथ शत्रुता करते हैं, वे लोग तुम्हारे विक्रमको देखकर शत्रुपक्षको छोड़ तुम्हारे साथ हो जायंगे, अतएव उन सब लोगोंके साथ मिलकर, समयोचित शत्रुव्यसनके आकांक्षी होकर गिरि-दुर्गका आश्रय करो। सिन्धुराजको अजर या अमर समझ कर निश्चेष्ट मत हो रहो। हे पुत्र, तू नामसे तो सञ्जय है, पर कामोंमें इस नामकी अन्वर्थता नहीं दिखाई देती! इस कारण

मैं कहती हूं, कि व्यर्थनामी न होकर आज अपने नामको सार्थक करो और मेरी उपयुक्त सन्तान बनो। तुम्हारी बाल्यावस्थामें एक यथार्थदर्शी महाप्राज्ञ ब्राह्मणने तुम्हें देखकर कहा था, कि यह लड़का आरम्भमें तो बहुत कष्ट सहेगा, पर पीछे अत्यन्त समृद्धि पावेगा! उनकी इस बातका स्मरणकर मैं तुम्हारी विजयकी आशा रखती हूं और इसी लिये तुमको इस आग्रहके साथ उत्तेजित कर रही हूं और आगे भी करूंगी। मैं यह जानती हूं कि जो मनुष्य यथार्थ नीतिके अनुसार काम करते हैं, वे और अन्य व्यक्ति भी उनकी अर्थ सिद्धिके कारण, उनको सहायता पहुंचाते हैं, उनका मनोरथ अवश्य पूरा होता है।

समृद्धिरसमृद्धिर्व्वा, पूर्व्वेषां मम सञ्जय,
एव विद्वान् युद्धमना, भव या प्रत्युपाहर।
नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत्।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजन प्रतिदृश्यते।
पति पुत्रवधादेतत् परमे दुखमब्रवीत्।
दारिद्रमितियत्प्रोक्त पर्य्याय मरणं हि तत्।
अहं महाकुले जाता, ह्रदाद्ध्रदमिवागता।
ईश्वरी सर्व्वकल्याणैर्भर्त्रा परमपूजिता।
महार्ह माल्याभरणां सुमृष्टां वरवाससम्।
पुराहष्ट सुहृद्वर्गो, मायपश्यत् सुहृदगतां

भावार्थः—हे सञ्जय, पूर्व सञ्चित सम्पत्तिकी वृद्धि हो या

क्षय, मैं किसी तरह भी युद्धसे निवृत्त नहीं हो सकता,—ऐसा निश्चय कर युद्धके लिये तैयार हो जाओ। शम्बरमुनिने कहा है, कि जिस अवस्थामें आज घरमें अन्न नहीं है, कल क्या होगा, सर्व्वदा इस प्रकार चिन्ता करनी पड़ती है, उस अवस्थाकी अपेक्षा बुरी अवस्था और कोई नहीं हो सकती। यहां तक कि पति पुत्रके वधसे जैसा दुःख होना सम्भव है, इस अवस्थामें उससे भी अधिक दुःख होता है। दारिद्र-दुःख मृत्युका एक नामान्तर है। देखो मैं बड़े कुलमें जन्म लेकर एक ह्रदसे दूसरे ह्रदमें समागता होकर, सर्वेश्वरी, सर्व कल्याणवती और अपने पतिके द्वारा समादृता हुई थी। सुहृदोंने मुझे महामूल्य माल्य और अलङ्कार, उत्तम वस्त्र आदिसे विभूषिता, देखा था। अब वे लोग मुझे दारुण दुर्दशाग्रस्त देखेंगे।

यदा माञ्चैव भार्य्यांञ्च द्रष्टासि भृशदुर्बलाम्
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सञ्जय।
दासकर्म्म करान् भृत्यानाचार्य्यर्त्विक पुरोहितान्
आवृत्यास्मान् प्रजहतो दृष्टा किं जीवितेन ते॥
यदि कृत्यो न पश्यामि तवाद्याहं यथा पुरा
श्लाघनीय यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे
नेति चेद्ब्राह्मणं ब्रूयाद्दीर्य्येत हृदय मम।
न ह्येद न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान्
वयमाश्रयनीयास्म नाश्रेतारःपरस्य च
मान्येमाश्रित्य जीवन्ति परित्यक्ष्यामि जीवितम्।

भावार्थ:—हे सञ्जय, तुम जब मुझे और अपनी स्त्रीको जन-हीना और अत्यन्त दुर्बला देखोगे, तब जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं रहेगी। दास, दासी, भृत्य, आचार्य्य, ऋत्विग्, पुरोहित प्रभृति सब कोई जीविकाविहीन होनेके कारण हम लोगोंको छोड़ बैठेंगे! ऐसी दशामें तुम्हारे जीवन धारण करनेकी क्या आवश्यकता? पूर्व्वमें तुमने जो श्लाघनीय और यशस्कर कार्य्य किये थे, उन सब कामोंके करनेकी ओर तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं रहेगी, तो मेरे हृदयमें कैसे शान्ति आवेगी? आज तक किसी भी ब्राह्मणको मैंने नाहीं नहीं किया—अब जो यह काम मुझे करना पड़ेगा, तो मेरा हृदय अवश्य विदीर्ण हो जायगा। क्योंकि मैं या मेरे पति-पहले किसीने याचकोंको विमुख नहीं किया था! जहां हमीं लोग, सबके आश्रय-स्थल हो रहे थे, किसीका कभी आश्रय नहीं लिया, वहां आज यदि दूसरेका आश्रय लेना पड़े तो मैं अवश्य अपना जीवन त्याग कर दूंगी।

अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान् सञ्जीवयस्व न।
सर्व्वे ते शत्रव सह्या न चेज्जीवितुमिच्छसि
अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीवयमभ्युपपद्यसे॥
निर्व्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम्
एक शत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम्।

इन्द्रो वृत्तवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत
माहेन्द्रञ्च गृहं लोभे लोकानाञ्चेश्वरो भवत्।
नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रुनाहूय दंशितान्
सेनाग्रञ्चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम्।

भावार्थः—अतएव हे वत्स, अपार दुःख समुद्रके तुम्हीं हमारे पार-स्वरूप हो, तुम्हीं उस दुःख समुद्रसे मेरे उद्धारकर्त्ता परित्राणकर्त्ता हो। नौका-रहित विपद् समुद्रमें तुम्हीं नाव बन जाओ। इसके लिये तुम्हें यदि अनुचित स्थानमें भी रहना पड़े, घोर संकटमें भी पड़ना पड़े, तो तुम उसे भी स्वीकार कर लो। अधिक मैं क्या कहूं। हमलोगोंके इस मृत शरीरमें जीवनका सञ्चार करो। यदि जीवन धारण करनेको वासना न हो, तो सभी शत्रुओंका रहना तुम्हें सह्य हो सकता है। अन्यथा इस प्रकार क्लीवोंकी तरह वृत्ति अवलम्बन कर चिरकाल निर्वेदपरायण भग्नमना होकर यदि जीवित रहना हो, तो अभी इस पापपूर्ण जीवनका त्याग कर दो। शौर्यशाली व्यक्ति एक शत्रुका वध कर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। देखो, पुरन्दर एकमात्र वृत्रासुरका वध करके महेन्द्र हो गये। सभी देवताओंके ऊपर अपना प्रभुत्व जमाकर, सदाके लिये सर्व-लोकेश्वर हो गये हैं। उत्साहसम्पन्न वीर पुरुष युद्धस्थलमें अपना नाम कहकर रणोन्मुख शत्रुओंको ललकारकर अपने युद्ध-विक्रम द्वारा उनके अग्रगामी सैनिकका ध्वंसकर अथवा

सेनाध्यक्ष या प्रधान पुरुषका वधकर जब विपुल यशको पाते हैं, तब उनके अन्यान्य शत्रु व्यथित और भीतचित्त होकर स्वतः उनके अधीन हो जाते हैं। परन्तु जो लोग कापुरुषताका अवलम्बन करते हैं, वे लोग परवश होकर रणदक्ष शौर्य्यशाली पुरुषको सर्व्व प्रकारकी समृद्धिसे पूर्ण कर देते हैं।

यदैव लभते वीर सुयुद्धेन महद्यश
तदैव प्रवथन्ते स्म शत्रवो विनमन्ति च।
त्यक्तात्मान रणेदक्ष शूर कापुरुषा जना
अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्व्व कामसमृद्धिभिः।
राज्य चाप्युग्रविभ्रंश सशयो जीवितस्य वा
न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः।
स्वर्गद्वारोपम राज्यमथवाप्यमृतोपमम
रुद्धमेकायन मत्वा पतोल्मुक इवारिपु।
जहि शत्रून् रणे राजन् स्वधर्ममनुपालय
मा त्वादृश सुकृपण शत्रुणां श्रीविवर्द्धनम्।
अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम्
अपि त्वां नानुपश्येय दीना हीनामिवास्थितम्।
हृष्य सौवीरकन्याभिर्हृष्यमानो यथा पुरा
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशागम।

भावार्थः—राज्यविध्वंस हो—जीवनमें संशय उपस्थित हो; तोभी शत्रुके मिलने पर विना उसका अन्त किये, सत्पुरुष दम नहीं लेते। हे सञ्जय, विक्रम प्रकाश करनेसे स्वर्गद्वारोपम

अथवा अमृत सदृश राज्य लाभ हो सकता है, यह बात हृदयमें रखकर प्रज्वलित अग्निके समान शत्रुओं पर पड़ो। मैं तुमको शत्रुओंका आनन्दवर्द्धनकारी अत्यन्त कातर न देखूं, हमारे पक्षवाले तुम्हारी इस कायरतासे शोक-समुद्रमें निमग्न हो रहे हैं, उन्हें देख विपक्षी आनन्द प्रकाश करते हैं। तुम शोक समुद्रमें निमग्न अपने सैनिकोंके साथ इस समय बड़ी दीनतामे पड़े हो। यह देखकर मैं दीन हीन होकर रो रही हूं। तुम शीघ्र अपना पराक्रम दिखाकर यह चिन्ता दूर करो। हे पुत्र, तुम पूर्ववत् आनन्दित होकर सौवीर कन्याके श्लाघनीय और प्रमोद-भाजन बनो। अवसन्न होकर सैन्धव-कन्याओंके वशगामी मत हो।

युवारूपेण सम्पन्नो विद्ययाभिजनेन च
यत्त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः।
अधूर्य्यवद्व वोढ़व्ये मन्येमरणमेव तत्
यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे
नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेत्‌योऽन्यस्य पृष्ठतः।
न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितमर्हसि
अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत्परिशाश्वतम्
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि
शाश्वतञ्चाव्ययञ्चैव प्रजापतिविनिर्मितम्

यो वै कश्चिदिहा जात क्षत्रिय क्षात्रकर्मवित्
भयाद्वृत्तिं समीक्ष्यो वा न नमेदिह कस्यचित् ।
उद्यच्छेदेव न नमे दुद्यमोह्येव पौरुषम्
अप्यपर्वणि भज्येत् न नमेतेह कस्यचित्
मातङ्गो मत्त इव च परीयात् स महामना
ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्य धर्मायै व च सञ्जय ।
नियच्छन्ति तरान् वर्णान् विनिघ्नन् सर्वदुष्कृतः
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥

भावार्थः—तुम्हारे जैसे रूप गुण-सम्पन्न, विद्यासे अलंकृत महाकुल सम्भूत, लोकविख्यात यशस्वी युवा यदि बैलकी तरह दूसरेका आज्ञापालक हो, अनुचित व्यवहार करे, तो मेरे विचार-से वह मनुष्य मृतकके समान है—मुर्दा है। तुमको दूसरेका चाटुकार अथवा दासके समान पिछलग्गू देखकर मेरे हृदयमें शान्ति कैसे आ सकती है? इस कुलमें अब तक ऐसा कोई नही जन्मा, जो किसीका अनुगमन करे। अतएव हे वत्स, परायेका अनुचर होकर तुम्हें कदापि जीवन यापन करना उचित नहीं। क्षत्रियोंका जो चिर-प्रसिद्ध परम धर्म्म है, उसे मैं भलीभांति जानती-हूं। प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी पण्डितोंने इस विषय-में जो कुछ कहा है और प्रजापति विधाताने भी इनको जिस प्रकार चिरन्तन और अव्यय रूपसे निर्मित किया है, उस बातको भी मैं भलीभांति जानती हूं। इस संसारमें पुरुषोंको किसी

प्रसिद्ध क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर सभी धर्मोंका यथार्थ मर्मज्ञ होकर केवल जीवनके लिये भग्नप्रयुक्त हो शत्रुओंके निकट अवनति स्वीकार करना उचित नहीं है। अतएव सतत उद्यमशील होना चाहिये। कभी अवनत नहीं होना। जहां सन्धि नहीं है, वहां टूटना अच्छा है—मरना उत्तम है, पर किसीके सामने अवनति स्वीकार करना नहीं चाहिये। महामना वीर पुरुष मत्तमात्तंगके समान निर्भय होकर विचरण करते करते धर्म्मके अनुरोधसे ब्राह्मणोंके पास नित्य अवनत होते हैं। और समस्त वर्णोंको बलपूर्व्वक अपने वशमें लाकर दुष्टोंका दमन करे वह क्षत्रिय सपूत, जो सहायसम्पन्न हो या निःसहाय हो, जबतक जीवित रहे, इस पृथ्वी मंडल पर रहे।

इस प्रकार ज्वालामयी वाक्यावलीसे परम कारुणिक माताने अपने पुत्रको—अपने विवश पुत्रको क्षत्रिय-पुत्रके धर्मपर आरूढ़ किया! माताने जो सारपूर्ण उपदेश दिया है, उस पर जितना भी कहा जाय, वह सब थोड़ा है! और फिर इसके अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता है?

भगवान् व्यासदेवने इन उपदेशों पर जो मन्तव्य प्रकाश किया है, उन्हीं कई श्लोकोंको उद्धृत करके हम इस पुस्तकको समाप्त करते है। भगवानने कहा है—

इदमुद्धर्षणं भीम तेजो वर्द्धनमुत्तमम्
राजानं श्रावयेन् मन्त्री सीदन्त शत्रु-पीड़ितम्।

यमो नामेतिहासोऽय श्रोतव्यो विजिगीषा ।
तर्हीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रुञ्च मर्दति
इद पुंसवन चैव वीराजनन मेव च ।
अभीक्ष्णं गर्भिनी श्रुत्वा ध्रुवं वीर प्रजायते
विद्याशूरं तप शूर दानशूर तपस्विनम् ।
ब्राह्मा श्रिया द्दिप्यमान साधुवादे च सम्मतम्
अर्चिष्मन्त बलोपेत महाभागं महारथम् ।
धृतिमन्तमनाधृष्य जेतारमपराजितम्
नियन्तारमसाधूनां गोप्तार धर्म्मचारिण
ईदृश क्षत्रिया सूते वीर सत्यपराक्रम ॥

भारतमाताएं यदि इस उपदेशका अनुशीलन करें तो उनके पुत्रोंका तेज बढ़ेगा, वे पुत्र, शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ होंगे, पुत्रोंका पौरुष भाव बढ़ेगा। गर्भिणी स्त्रियां इसका पाठ करें, तो वीर पुत्रकी जननी होंगी तथा विद्याशूर, तपःशूर दानशूर तेजस्वी, नाना प्रकारके बलोंसे युक्त, अपराजेय धृति-मन्त, साधुओंकी रक्षा करनेवाला, और दुष्टोंका दमन करने वाला पुत्र होगा। हमें आशा है, कि इन उपदेशों का अनुशीलन कर प्रत्येक जननी भारतके पूर्व्व गौरवको बढ़ानेके लिये प्रयत्न-वान होगी।

[समाप्त]